जीवनानन्द दास

चिदानन्द दासगुप्त

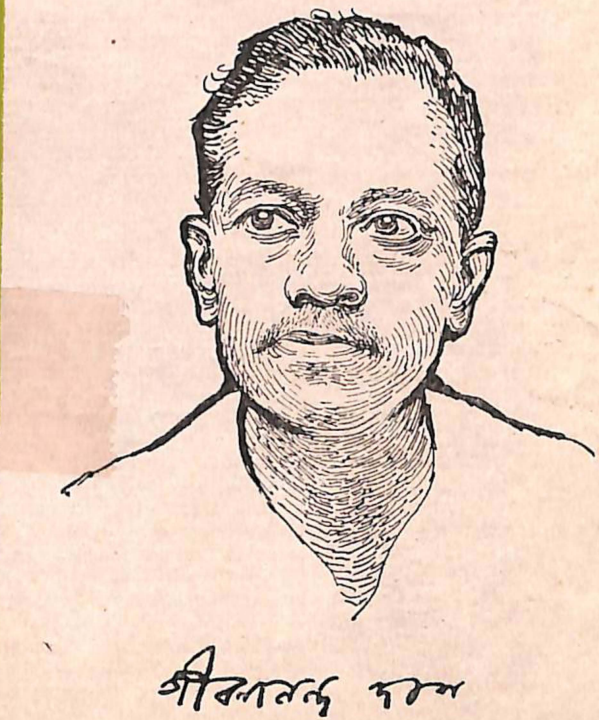

MT
891.441 6
D 26 D
भारतीय
साहित्यक
निर्माता

MT
891.5416
D 26 D

INDIAN INSTITUTE
OF
ADVANCED STUDY
LIBRARY, SHIMLA

भारतीय साहित्यक निर्माता

जीवनानन्द दास

लेखक

चिदानन्द दासगुप्त

अनुवादक

मदनेश्वर मिश्र

साहित्य अकादेमी

Jibanananda Das : Maithili translation by Madaneshwar Mishra of Chidananda Dasgupta's monograph in English. Sahitya Akademi, New Delhi (1985

SAHITYA AKADEMI
REVISED Library IIAS, Shimla
MT 891.441 6 D 26 D
00117149

© साहित्य अकादेमी

H
891.441 6
D 26 D

प्रथम संस्करण : 1985

साहित्य अकादेमी

प्रधान कार्यालय
रवीन्द्र भवन, 35, फ़ीरोज़शाह मार्ग, नई दिल्ली 110001

क्षेत्रीय कार्यालय

ब्लाक V-बी, रवीन्द्र सरोवर स्टेडियम, कलकत्ता 700029
29, एल्डाम्स रोड (द्वितीय मंज़िल), तेनामपेट, मद्रास 600018
172, मुम्बई मराठी ग्रन्थ संग्रहालय मार्ग, दादर, बम्बई 400014

SAHITYA AKADEMI
REVISED PRICE Rs. 15.00

मुद्रक
संजय प्रिंटर्स,
दिल्ली 110032

Indian Institute of Advanced Study
117149
9.12.04
SHIMLA

विषय–सूची

1	युग	7
2	व्यक्तित्व	13
3	कवि	15
4	अनुवाद	27
	संदर्भ-सूची	59

1 युग

जीवनानन्द दासक प्रायः सम्पूर्ण जीवन (1899-1954) ओहि अवधिमे व्यतीत भेल जाहिमे रवीन्द्रनाथ टैगोरक प्राधान्य छल।

कोन सीमा धरि आधा शताब्दी पर्यन्त बंगालक चेतना टैगोरसँ आप्लावित रहल से ओएह लोकनि टा बुझि सकैत छथि जे एकर अनुभव कयने छथि। ओहि युगमे प्रायः प्रत्येक साक्षर बंगाली हुनक गद्यशैलीक अनुकरण तँ करिते छल, जे अपन हस्तलिपि सेहो हुनके सदृश बनब' चाहैत छल, हुनक दू हजारमेसँ कम-सँ-कम पाँच सय गीत ओ जनैत रहैत छल, स्कूल की कॉलेजमे हुनक एकोटा नाटकमे ओ कोनो-ने-कोनो भूमिका अवश्य कयने रहैत छल, हुनक अनेक कविता ओ ओहिना पाठ क' सकैत छल, हुनक सभ उपन्यास तथा अधिकाधिक निबन्ध ओ पढ़ि लेने रहैत छल, शान्तिनिकेतनमे हुनक काव्यात्मक परिवेश ओ देखने रहैत छल आ सभसँ विशेष तँ ई जे ओ रवीन्द्रनाथक अभिवृत्तिकें आत्मसात क' लेने रहैत छल, आ जाहि कोनो वस्तुक सम्पर्कमे ओ अबैत छल ताहिमे ओकर प्रयोग करैत छल। पूब आ पश्चिम, नव आ पुरान, धर्म आ विज्ञानक प्रति समन्वयवादी अभिवृत्ति आ एक उदार मानववादी आ समाज-सुधारक दृष्टि, जाहिमे 'ब्रह्मो' शुद्धतावादी आग्रह रहैत छल, निरन्तर कैक पीढ़ीक मानसक परतकें भेदन कयने छल। कोनो शिक्षित बंगालीक हेतु ई असम्भव छल जे ओ रवीन्द्रनाथ टैगोरक बिना, हुनका छोड़िक' किंवा हुनकासँ बाहर भ' क' किछु सोचि सकय। बंगाली मानसक लेल ओ अपन जीवन आ साहित्यक अति विशाल छत्ताक निर्माण कयने छलाह।

हम भूतकालक व्यवहार दुविधाक संग क' रहल छी, कारण जे रवीन्द्र-परंपराक प्रभाव समाप्त भ' गेल अछि, से नहि। मुदा, बहुत लोक, जे 1941मे हुनक मृत्युक बादक छथि, आब तीसक धतपत भ' रहल छथि तथा एहि बीच बंगालक वातावरण बहुत-किछु बदलि गेल अछि। आइ बंगालीक लेल हुनका दिस घूरिक' देखब आ हुनका सम्बन्धमे किछु सोचब सहज नहि अछि। द्वितीय विश्व-युद्ध, जीविकाहीनता, कटुतर राजनीतिक संघर्ष एवं स्वातन्त्र्यपूर्वक संचित मूल्यमे सर्वथा अवमूल्यनक भावना टैगोरक संगहि हुनक युगक पूर्ण एकान्वयक स्थितिकें

परिवर्तित क' देने अछि।

शिक्षित वंगालीक लेल ई कठिन छल जे ओ रवीन्द्र-परिधिक बाहर रहि सकय, विशेषतः ओहि वंगाली कविसभक लेल जे ओहि समयमे आँखि खोलने छल ! कठिनता दोहरी छल। ओ ओकरालोकनिकें अपन निरन्तर विकसित विचारक नवीन स्थितिसँ चकित करैत गेलथिन। अपन सांघातिक रोगक, जाहिमे ओ वाँचि टा गेलाह, ठीक वादे, 1937 मे प्रकाशित कविता-संग्रह 'प्रांतिक' (वाहरी परिधिसँ) सँ प्रारम्भ क' ओ समकालीन यथार्थक प्रति नवजागरणक सन्देश देलनि एवं युद्धक प्रचंडता आ अपन चारू कात परसल अनिष्टकर फसिलक अत्यन्त कटु आलोचना कयलनि :

फुफकारैत साँप विषाक्त क' दैछ वायुमंडलकें,
शान्तिक सुसंवाद लगैत अछि निस्सार,
वीति गेल अछि हमर काल, मुदा जयवासँ पूर्व
हम आह्वान करैत छी हुनकालोकनिक
जें अपन-अपन घरमे
तैयारी क' रहल छथि दैत्यसँ भिड़वाक।

(प्रांतिक, कविता-संख्या-18)

एकर कल्पना सहजहिं कयल जा सकैत अछि जे कविकें, जे शान्तिक एकान्त पुजेगरी छलाह, अपन वृद्धावस्थामे उक्त पाँतीसभ, विशेषतः दोसर पाँती, लिखवामे कतेक कष्ट भेल होयतनि।

चारिम दशकमे कविक एक सम्पूर्ण पीढ़ी सचेत भ' क' टैगोरक प्रभावसँ मुक्तिक प्रयास कयलक, जाहिमे वुद्धदेव बोस प्रायः सभसँ अधिक मुखर छलाह। टैगोरक मृत्युसँ लगभग पन्द्रह वर्ष पूर्व धरि 'कल्लोल' मंडलीक, जकर केन्द्र एही नामक पत्रिका छल, अनेक सदस्य जे अंग्रेजी कविताक युद्धोत्तर नैराश्य अथवा मार्क्सवादी दर्शन किंवा एहि दुनूक पूर्ण प्रभावमे छल—रवीन्द्रोत्तर अभिव्यक्ति दिस उन्मुख भेल। रवीन्द्रनाथक जन्म-दिवसपर रचित विष्णु देक एक कविता एहि परिप्रेक्ष्यमे द्रष्टव्य :

टैगोरसँ पैंच-पालट नहि, आब नहि,
आब नहि आदि-नदीक जटासँ
बन्हायल रहब आओर,
हमर आत्माक गंगा उन्मुक्त
भ' रहली अछि समुद्रोन्मुखी—गीतमे
ओकर प्रत्येक पंक्ति, प्रत्येक रंग,
प्रत्येक चित्र, प्रत्येक कवितामे

हर्षाभिभूत हम उद्घाटित
करैत छी नव-नूतन तरंगकें ।

(विष्णु दे : पँचिसे वैशाख)

तथापि, जीवनानन्द 'टैगोरक प्रति विद्रोह' सँ अपन श्रीगणेश नहियें कयलनि, अपितु रवीन्द्रोत्तर कोनो कविसँ अधिक हिनक कोनो कथ्य टैगोरक समानान्तरे विकसित भेल । एहि प्रसंग ई स्वयं तीव्रतापूर्वक जागरूक रहल होयताह, कारण ई लिखैत छथि :

"कविक जन्म पूर्ववर्त्ती महान् कविलोकनिकें उखाड़ि फेकि देबाक षड्यन्त्र-जन्य नहि होइत अछि···। अपवादस्वरूप एक-दू कविक किछु कविताकें छोड़ि शेष बंगला कवितापर अल्पायु होयबाक छाप एतेक स्पष्ट अछि जे रवीन्द्रक कोनो गीत अथवा कवितासँ क्षणो भरिक भिड़ंतमे एहि बातक लेल हुनका प्रति कृतज्ञ भ' जाइत छी जे अल्पजीवी कवितासभसँ हुनक कवितामे कतेक पैघ अन्तर अछि··· **टैगोरेक इंगितिसँ ई संभव भ' सकल अछि जे आधुनिक बंगला कविता एक अल्पारम्भ कयने अछि** (ध्यानाकर्षण लेखकक) आ एकर परिणति बंगला साहित्य किंवा रवीन्द्रक मूलाधारकें नष्ट करबामे नहि भ' सकैत अछि···।"

जीवनानन्दक शक्ति एहीमे छनि जे रवीन्द्र-परम्पराक विरोधमे ठाढ़ नहि भ' क' ई ओकरा एक नवयुगक चेतना आ 'मोहाबिरा' दिस अग्रसर कयलनि । **परम्परा आ वैयक्तिक प्रतिभाक** ओ अन्यतम उदाहरण छथि, जकरा टी० एस० एलियट एही नामक अपन निबन्धमे कतेक सुन्दर ढंगे परिभाषित कयने छथि !

ई ओ अवधि छल जखन बंगला साहित्यपर पाश्चात्य बसातक अभ्याकरण भ' रहल छल—ओ बसात जे दू युद्धसँ प्रसूत ओहि बंजर भूमिक आर-पार बहैत आयल छल जाहिमे विक्टोरिया-युगक नैतिक निश्चितता ढहि गेल छल, अणु-युगक प्रवेश-द्वारपर अपन नव अनिश्चितताक सर्जन करैत विज्ञान ठाढ़ आ क्षत-विक्षत परि-दृश्यक अनेक कोनमे मार्क्सवाद अपन पताका फहराब' लागल छल ।

ई उल्लेखनीय अछि जे रवीन्द्र-युगक अंतिम चरण आ रवीन्द्रोत्तर कालमे बंगला साहित्यक अनेक सर्जक अंग्रेजीक प्राध्यापक छलाह—बुद्धदेव बोस, विष्णु दे, अमिय चक्रवर्ती, समर सेन, जीवनानन्द दास । आ, जँ ओलोकनि अंग्रेजीक प्राध्यापक नहियों छलाह तँ अंग्रेजीमे पत्रकारिता करबाक कारणें ओकर अत्यन्त निकट छलाह । हुनकालोकनिक कवितामे पाश्चात्य कला आ साहित्यक 'क्लासिकी' तथा आधुनिक संदर्भ—मिथकक जेना बाहुल्य छल । टी० एस० एलियट, वेब्स, डब्ल्यू० बी० इट्स आ क्रिस्टोफर काडवेल, रजनीपाम दत्त एवं आस्वाल्ड स्पेंगलरक परस्पर विरोधी धारणाक मध्यसँ आधुनिक बंगला साहित्य अनिश्चित यात्रा प्रारम्भ कयलक, जकर विभिन्न दिशा जेना अपना दिस खीचि रहल छल ।

किन्तु, पश्चिम, बंगालीक मानसेपर वेश-भूषा एवं चित्रकक्षक अपेक्षा सतत अधिक प्रभाव उत्पन्न कयने अछि। ई प्रभाव कहियो असंश्लेषित नहि रहल। समान्यतः यदि कोनो बंगालीकें पश्चिमक ज्ञान अधिक घनिष्ठ छल, तँ ओ आओर पक्का बंगाली बनि गेल आ ओकर संश्लेषण अधिक सशक्त भ' गेल। उदाहरणार्थ सुधीन्द्रनाथ दत्त अपन संस्कृत साहित्यक गहन ज्ञान एवं प्रेमकें टी० एस० एलियट, बाँदलेयर आ पॉल वेलरीक संग मिश्रित क' खाली एक चुस्त आ संक्षिप्त प्रभावशाली गद्यशैलीक रचने नहि कयलनि, अपितु अपन एक भिन्न मानसिकता सेहो बनओलनि। मिश्रणक ई प्रक्रिया स्वयंमे विलक्षण नहि छल, कारण ओहि पीढ़ीक सभ रचनाकार एहीं ढंगक कार्य कयलनि—विलक्षणता प्रत्येक स्थितिमे भिन्न-भिन्न प्रकारक मिश्रणक प्रक्रियामे निहित छल।

जीवनानन्द दासक आजीवन अंग्रेजी-साहित्याध्यापन-वृत्ति, मातृभूमिक प्रशंसामे, कोनो साहित्यिक संदर्भमे, किछु अत्यन्त मर्मस्पर्शी आ अत्यधिक वैयक्तिक काव्य-रचनामे, कोनो प्रकारक बाधा नहि बनलनि। एहिमे बंगाली जीवन आ दृश्यमान जगतक अमूल्य गहन ज्ञानक विवरणक प्राचुर्य अछि आ तें हिनक कृतिक अनुवाद हमरा लेल अत्यन्त कठिन अछि। ('रूपसी बांगला' संग्रहमेसँ 'एक दिन हम धुरि क' आयब' मात्र एहन कविता अछि जकर अनुवादक साहस हम एहि ग्रन्थमे कयने छी।)

जीवनानन्द दास अपन कवि-जीवनक सभसँ अधिक रचनात्मक पक्षमे जाहि काल प्रवेश कयलनि, तखन बंगला साहित्यक धारा, 46 धर्मतल्ला स्ट्रीटक सांस्कृतिक विचारसँ प्रभावित-नियन्त्रित भ' रहल छल—युद्धकालमे ओतहि फासिज्म विरोधी लेखक-कलाकार-संघक मुख्यालय छल जे युद्धोत्तर कालमे प्रगतिशील लेखक-कलाकार-संघक रूपमे प्रतिष्ठित भेल आ छठम दशकमे जकर प्राधान्य रहल।

ओहि समयक युवा प्रतिभा एकरे लग-पासमे एकत्र भ' संभवतः जनसाधारणसँ अपन तादात्म्य आ अंततः अपन विजयमे विश्वास ताकि रहल छल। ओहि कालमे एहिसँ भिन्न रूपें लिखबाक अर्थ छल अपनापर पलायनवादी होयबाक आरोप आमन्त्रित करब, आ ई आरोप जीवनानन्दपर लगाओलो गेल छलनि। किन्तु, एको क्षण लेल हिनक मोनमे एहन भाव नहि अयलनि जे ओलोकनि जेना करैत छथि तहिना हमहूँ करी—हिनका कोनो सुलभ मार्गक जिज्ञासा नहि छलनि आ ई ओ म्हरे बढ़ि रहल छलाह जेम्हर हिनका बढ़बाक छलनि। ई उल्लेखनीय अछि, कारण जे बंगला साहित्यक प्रारम्भिक वामपन्थी धारा एहि विषयपर पर्याप्त रूपसँ ध्यान नहि देने छल जे अंग्रेजीमे शिक्षित कविता लिख'-पढ़वाला मध्यम वर्ग एवं अशिक्षित विशाल समुदायक बीच—जे राताराती एकर मुख्य विषय-वस्तु बनि गेल—कतेक पैघ खाधि छल।

एहिसँ जे तनाव उत्पन्न होयबाक छलैक से शीघ्रे सोझाँ आबि गेल। नागरिक जीवनक बंजरताकें ल' क' समर सेनक कवितामे जे वेदना छलनि से जनसाधारणक विजयपर हुनक आनुष्ठानिक विश्वासक अभिपुष्टिसँ अधिक विश्वसनीय छल। एकरा ओ एतेक नीक जेकाँ अनुभव कयलनि जे ओ कविते लिखब छोड़ि देलनि। विष्णु देक संवेदनशीलता कोनो झंडाक प्रति निष्ठाक अपेक्षा मानव जातिक प्रति प्रेम आ अपन परिश्रम-बलपर निर्भर अपार जनसमुदायक प्रति सहानुभूतिकें कविताक आधारशिला मानलक। मार्क्सवादी जकरा वर्गीय चरित्र कहैत अछि, ओकरा उतारि फेकबामे कविगण असफलते देखओलनि। वस्तुतः, आइ ओहि समयक प्रसंग विचार करैत ई शंका होइत अछि जे सुभाष मुखोपाध्याय आ सुकान्त भट्टाचार्यक परिमित कविताकें छोड़ि आ जनसाधारणक स्थितिक विषयमे जागृति अनबाक अतिरिक्त 46, धर्मतल्ला स्ट्रीटक साहित्य-दर्शन रचनात्मक रूपसँ किछुओ अधिक कयने हो। ओ रचनाकारलोकनिकें आशावादक प्रति सम्मोहित करबाक विफल चेष्टा कयलक आ ओहि स्थितिमे इलियटे जकाँ (जकर संकेत पहिनहिं देल गेल अछि) जेना नैराश्यक सत्यते प्रमाणित भेल हो!

दोसर दिस किछु एहन लेखकक विरहक कृति सभमे लोकक संग वास्तविक एकीकरण प्रकट भेल, मुदा ओ अपने निष्ठामे रहलाह आ जनसाधारणक भाग्यक संग अपनाकें जोड़बाक कोनो उद्‌घोषण नहि कयलनि। विभूतिभूषण वन्द्योपाध्यायक लोकक संग तादात्म्य कैक प्रकारें वामपन्थी लेखकक किछु आत्मचेतनपूर्ण प्रयाससँ अधिक गहन छल। वनस्पति, सरिता, ऋतु, फसिल आ दिन-प्रतिदिनक काजमे लागल सामान्य जनक आदतिक सम्बन्धमे जीवनानन्दक ज्ञान बहुत-किछु विभूति-भूषणहिक (सत्यजित राय जनिक उपन्यासक आधारपर अपु चित्रपटत्रयी बनओलनि आ जे भारतीय चित्रपटक अपन परिचयक कारण बनल) सन अन्तरंग छलनि, मुदा चेतनापूर्वक कोनो प्रकारक बामपन्थी विचार-धाराक बिनु समर्थन कयने। सम्भवतः एहि दुनू गोटेक संग हम प्रतिष्ठित विरह-चित्रकार यामिनी रायक नाम सेहो ल' सकैत छी जनिक कृतिक विष्णु दे एक सफल क्षमताशील व्याख्याकार रहल छथि।

बंगालमे आइ ई प्रायः सर्वत्र स्वीकार कयल जाइत अछि जे रवीन्द्रोत्तर कालमे हमरालोकनिक कविता जीवनानन्द दासहिमे पूर्णता प्राप्त कयलक। नजरुल इस्लाम देशभक्तिक ऐश्वर्यमे डूबल गीत लिखलनि जे थाकल ठेहिआयल पीढ़ीक कान्हपर भरिगर बूझि पड़ैत छलैक, सुधीन्द्रनाथ दत्त संस्कृत साहित्यक गहन अध्ययन कयलनि आ ओकरा आधुनिक जीवन एवं साहित्यसँ समन्वित क' सुदृढ़ प्रखर रचनात्मक अभिव्यक्तिक आधार देलनि। विष्णु दे कोमल स्पर्श आ गहन संवेगात्मक अभिव्यक्ति ल' क' अयलाह, ओ आरागों आ एलुआरक कविताक अनुभवसँ युक्त तीव्र बौद्धिक आत्मसजगताक कविता लिखलनि, बुद्धदेव बोस

इन्द्रिय-वोधक अनेक भंडारक द्वार खोललनि, प्रेमेन्द्र मित्र कल्पना-प्रधान कविताक आरम्भ कयलनि, जकर विषय छल जनसाधारणक आह्वान, व्यापक सम्बन्ध आ दूरदेश; अमिय चक्रवर्ती आधुनिक 'मोहाविरा' आ व्यापक लयात्मक शक्ति ल' क' अयलाह; अजित दत्त सुधीन्द्रनाथ दत्तहिक सन भारतीय आ समकालीन अपन संश्लेषण तैयार कयलनि आ रूप एवं अभिव्यक्तिक संक्षिप्ति प्राप्त कयलनि। प्रत्येक कवि भिन्न-भिन्न ढंगें विशेष योगदान कयलनि। मुदा, एहिमे सन्देह अछि जे केओ जीवनानन्द दासक काव्यमे उपलब्ध मौलिकता, शक्ति आ हर्ष-विह्वलताक गुणक प्रदर्शन कयने होथि। आइ-काल्हि बंगला कविक युवा पीढ़ीक मध्य हिनक ओएह स्थान छनि जे कहियो रवीन्द्रनाथक छलनि। हुनकालोकनिपर हिनक व्यापक प्रभाव अछि। अन्तर एकेटा अछि—ई प्रभाव कविताक बाहर नहि जाइत अछि।

2 व्यक्तित्व

जीवनानन्द दास कविताक परिधिसँ बाहर कहिओ जीलाह नहि । ई किछु गल्प, निवन्ध आ उपन्यासो लिखलनि, मुदा कविते हुनक जीवनकें पूर्णता प्रदान कयने छल । रवीन्द्रनाथ-सन ओ कलाकर्म आ ओहिसँ जुटल बाहरी उपकरणक एकान्वितिपर जोर नहि दैत छलाह । जेहन हिनक कविता हो, ताही प्रकारक वेश-भूषा सेहो हो, तेहन कोनो अन्तःसम्बन्ध हुनका लग नहि छलनि । लिखबाक शैली हिनक घरक सजाबटिसँ मेल खाइत हो, हिनक एहन कोनो आग्रह नहि छल । ई छायाभास तथा यथार्थक बीच, कल्पनाक संसार आ सामाजिक परिवेशमे जीवनक बीच, कोनो संश्लेषण नहि चाहैत छलाह । बांग्लादेश स्थित बारीसालक ग्रामीण वातावरण जत' हिनक जन्म आ लालन-पालन भेल छलनि, हो किंवा कलकत्ता, जत' ई बादक समय बितओलनि, हो—दुनू स्थानमे ई गहन आ ऐकान्तिक भावसँ कल्पनाशील जीवन व्यतीत कयलनि । ई अपन जीवनक परिपार्श्विक वातावरणसँ दूर रहितहुँ, ओकर मर्मज्ञ पर्यवेक्षक छलाह । मुदा, जहाँ धरि ओहिमे सशरीर भाग लेबाक प्रश्न छल, ई सहभागिता हिनक कृतित्वेक द्वारा छल । ई कवि छलाह, कविक अतिरिक्त किछु नहि छलाह ।

अपन एक लेखमे ई स्वयं लिखने छथि— "वास्तवमे जे कवि छथि हुनका लेल ई सम्भव नहि होयतनि जे ओ दिन-प्रतिदिनक संसारकें कोनो असामान्य दोसर उपहार द' सकथिन, जेहन अपन पहिल—कविताक ।"

ई अत्यन्त दुःखद छल, किन्तु एहूमे जेना एक काव्यात्मक औचित्यक उपस्थिति छल—जे एहन व्यक्तिक मृत्यु ट्रामसँ पिचाक' भेल । हिनक मृत्युक पूर्वहि जेना हिनक जीवनपर कोनो अनहोनी भूत मरड़ा रहल छल । जीवनानन्द जेहन छलाह तकर ठीक विपरीत लोक हिनका देखैत रहल—ई तँ अत्यन्त प्राणवन्त सहृदय मानव छलाह । बहुत दिन धरि ई ने खाली सजनीकान्त दास (जे 'शनिवारेर चिठी' क प्रायः प्रत्येक अंकमे हिनकापर आक्रमण करैत रहैत छलथिन) सन रूढ़िवादी सभक बीच उपहासक पात्र रहलाह, अपितु हुनकालोकनिक मध्य सेहो, जे आधुनिक होयबाक दावी करैत छलाह । ई एक धर्मपरायण 'ब्राह्मो' परिवारमे जन्म ग्रहण

कयने छलाह (हिनक पिता सुशिक्षित स्कूल-अध्यापक छलथिन आ माय कवयित्री) आ किछु दिन धरि कलकत्ताक 'ब्राह्मो' आधिपत्यवला सिटी कालेजमे अंग्रेजी साहित्यक अध्यापन कयने छलाह। कहल जाइत अछि जे कालेजक 'शुद्धतावादी' प्रवन्धकलोकनि हिनका अपन पदसँ हँटा देने छलथिन, कारण जे ई अपन एक कवितामे स्त्री-उरोजक महिमाक वखान कयने छलाह। एक कथा ईहो अछि जे हिनक परिवारक किछु सदस्यलोकनि हिनकासँ ई जान' चाहैत छलथिन जे 'वनलता सेन' के छलि आ हिनका सन विवाहित व्यक्ति कोनो दोसर स्त्रीक प्रेममे कोन कारणें पड़ल छल? ई कथासभ अप्रामाणिक हो अथवा नहि, किन्तु एहिसँ हिनका आ हिनक समयसँ सम्बद्ध वहुत-किछु तर्कसंगत वातक पता लगैत अछि। प्राय: जीवनभरि ई अंगरेजी साहित्यक अध्यापक रहलाह, मुदा वादक वर्षमे अपन आय वढ़यवाक हेतु हिनका इन्स्योरेन्सक काज सेहो करय पड़लनि—ओहू समयमे, जखन हिनक कविता अपन स्थान वनव' लागल छल।

लोकक संग सम्पर्कमे हिनका सतत अभिव्यक्तिमे कष्ट होइत छलनि जकरा बुद्धदेव बोस सन हुनक प्रशंसक सेहो स्वीकार कयने छथि, वास्तवमे हिनक आकृति सामान्यतः एहन मुखड़ा-सन बूझि पड़ैत छल, जकरा किछुए लोक नीक जेकाँ बूझि सकल छलनि। हिनक जीवन निश्चित रूपेंरवीन्द्रक आदेशक प्रशान्त एकान्विति आ व्यापक संश्लेषणसँ बहुत दूर छल। हिनक जीवन अपन समयक अनुरूपे छल—अपन तनाव, अपन गुप्त वेदना, अपन अविश्वास आ अपन मोहभंगक संग। अपन कृतित्व आ अपन जीवनमे ओ रवीन्द्रोत्तर कालक छलाह।

3 कवि

कत' रहहिं एतबा दिन, कह तों ?—ओ पुछने छलि
बगड़ा-खोंता सदृश आँखिसँ नॉटरबाली वनलता सेन।

जीवनानन्द दासक बिम्ब-विधान हिनक अद्‌भुत कविताक केवल एक पक्ष थिक। तथापि, हिनक भाषा (बंगला) क अतिरिक्त कोनो दोसर भाषामे हिनकापर लिखब आरम्भ करबाक हेतु इएह सर्वोत्तम विन्दु अछि, कारण जे अनुवादहुमे बिम्बक मौलिकता आ शक्ति कोनो-ने-कोनो प्रकारें प्रस्फुटित भ' जाइत छैक। एकर अतिरिक्त, बिम्ब-विधान अनुवादमे ओहि पारम्परिक आ अत्यन्त समकालीनक सफल समेकिकताक वोध करबैत अछि जे हिनक कविताकें विशिष्ट बनबैत अछि। वस्तुत: जीवनानन्द दासकें बुझवाक लेल ई कुंजीक काज करैत अछि।

जीवनानन्दक बिम्ब-विधान आ मोहाबिरा, टैगोरक संस्कृत साहित्यक परम्परासँ अपसारित आ तरंगायित कल्पनाक (जकर कारणे ओ एकदम अन-चिन्हार भ' जाइत छथि आ अनुवादमे घसल-पीटल) अपेक्षा अधिक वैयक्तिक अछि, अधिक स्पष्ट अछि आ काव्यात्मक परिपाटीसँ मुक्त अछि, संगहिं सद्य: कुरूपतासँ सेहो विमुख नहि अछि। वाक्य-रचना एवं भाषाक पारम्परिक व्यवहारक सम्बन्धमे बुद्धदेव बोस, विष्णु दे आ रवीन्द्रसँ विद्रोह कर'बला दोसर आन आत्मसजग विद्रोही रवीन्द्रसँ वाक्य-रचना तथा भाषाक पारम्परिक व्यवहारमे अधिक निकट छथि। जीवनानन्दक लेल एक वृक्ष कठिनतासँ प्रजातिगत अछि, तें ई ओकर नाम अवश्य लेताह। हिनक कवितामे जखन-तखन शब्द अपन सामान्य सन्दर्भसँ छीनि लेल जाइत अछि आ एक प्रकारक अति यथार्थवादी शक्ति प्राप्त क' लैत अछि, वाक्यरचना—वाक्यांश आ पद-लोपक जटिलताक तानी-भरनीक संगहि अछि।

जीवनानन्दक विस्तृत आ विविध प्रकारक बिम्ब-विधानक एक छोरपर अछि 'मृत्यु-पूर्व आओर की ?' (पृष्ठ-29) जे दृश्य आ श्रव्यगत जटिल बिम्ब-विधान सँ लदल अछि। ई बिम्ब सभ हिनक अपन अनुभूतिसँ रचल लगैत अछि एवं हठात् जेना एहिमे कल्पनाक पाँखि लागि जाइत हो अथवा ई शक्तिशाली रूपक आ स्थानानन्तरित उपाधि सभसँ अभिन्न रूपें गँथाइत चल जाइत हो।

'फूल छिटैत नदीमे, वनल कुहेसक झलफल-झलफल स्त्री-आकृति'
.....
'ल जाइत अछि चाउरक सौरभ, एकसरुआ क्यो
भरि-भरि मत्स्य आँखिमे'
.....
'इजोरियाक खरिहान—
ओहिपर खढ़-छारल चारक छाहरि जनि झँपा जाइत अछि'
.....
'एकमात्र अछि वैह किरण स्थिर
ओतहि सुन्दरी वास करै अछि—धूमन अगरु सदृश
छिटैत मादक सुगन्धकें—सगरे मुलुकक ।'

ई विम्बसभ ओ अछि जे प्रकृतिकें गहनता आ विविधतामे देखबाक कारणें विशिष्ट बनि गेल अछि, एकर वैशिष्ट्य एहू बातमे अछि जे ई कतेक सहजतासँ कविताक चिन्तनक मुख्य स्रोतमे, जे अंतिम पंक्तिसभमे उजागर होइत अछि, आत्मसात भ' जाइत अछि :

मृत्युपूर्व जनबाक शेष की ? बूझल नहि अछि ?—
कोना उठै छै प्रति आकांक्षा केर उपरसं ज्वारि तीव्रतर,
खाली ठाढ़ देबाल धूसरित मृत्यु-मुखक अछि ?
धराक सभटा स्वप्न-सम्पदा पाबि जाइत अछि शान्ति निरुत्तर ?
आब आर की शेष बुझक अछि ?
सूर्य अस्त भेलापर हम की चिड़ै-चुनमुनिक चीख
सुनल नहि ?
कौआकें कुहेसमे उड़ि क' लुप्त होइत की हम नहि देखल ?
(मृत्युर आगे : धूसर पाण्डुलिपि)

जाहि प्रकारें जीवनानन्द दास बिम्ब-पर-बिम्ब रखने जाइत छथि, कविताक अधिक भागपर एक प्रभावक बाद दोसर प्रभाव उत्पन्न करैत छथि आ हठात् वास्तविक अभिप्रायपर आबि जाइत छथि, से हम हिनक 'लहास' शीर्षक कविता (पृष्ठ-36) मे आओर अधिक नाटकीयताक संग देखैत छी।

एहि अत्यन्त सूक्ष्म विम्ब सभकें ओ कवि बुनने छथि जे प्रकृतिक सन्निकट रहल अछि (बारिसालमे, जे आब बांग्लादेश मे अछि) आ जे एकरा अत्यन्त तल्लीनतासँ देखने अछि। किछु बिम्ब तँ एतेक सहज आ शाब्दिक अछि जे ओहिमे व्यवहृत वस्तु सभसँ जे केओ परिचित नहि छथि, हुनका ओ विचित्र बूझि पड़तनि। दृष्टान्त रूपमे 'आह चिल्होड़ि' (पृष्ठ 47) कवितामे आँखिक तुलना बेंतक

फड़सँ कयल गेल अछि आ ई कतेक शाब्दिक अछि, कारण यर्थाथतः ओ दुनूमे बड़ साम्य अछि।

एहिसँ सर्वथा विपरीत 'लघु मुहूर्त्त' (पृष्ठ 50) सन हिनक कविता अछि जे पूर्णतः नगरीय, कुशाग्र, वदमाशी आ कटुतासँ भरल अछि :

वेंटिक स्ट्रीटक कातमे वैसल ओ सभ
विटिया रहल छल धरतीक सम्पदा।
सुनिक' ओकर वात कने फेनिल, मच्छर एक
उड़ि-उड़िक' वैसै छल ओकर नाकपर वेरा-वेरी।

आ तैयो, ओकर सहजता सर्वदाक समान उपयोगी होइत अछि तथा कतहु ओकर स्थान ल' लैत अछि एक गम्भीर अभिव्यक्ति :

जयवाक छै ओकरा उड़ैत नदीक छोर दिस—
जत' टूटत हाड़ आ मंत्रविद्ध वानर दहाइत पानिमे
अवैत अछि संगहि संग—प्रतिविम्वित होइत अछि
तावत धरि—जा धरि रहैत छैक वेला प्रतिविम्वनक।

एक तेसर प्रकारक विम्व-विधान लगभग पूर्णतः अंग्रेजी मुहाविरासँ प्राप्त अछि।

जखन पहिल वेर 'समाधि' (पृ० 52) कें मूल रूपमे पढ़लहुँ तँ हमरा ई बुझवामे किछु समय लागल जे पहिलदू पंक्तिसँ कविक की अभिप्राय छनि। मुदा, जखन अंग्रेजीमे ओकर अनुवाद कयलहुँ त' अर्थ स्वतः बुझवामे आबि गेल आ मूल कविताक पंक्तिसभ अनुवाद-सन लाग' लागल :

एहि ठाँ पड़लि अछि सरोजिनी (आवहुँ धरि
अछि पड़लि ? कहि ने) बहुतो दिन धरि पड़लि छलि

बँगलामे प्रथम वाक्यांशक आरम्भ कव्रक संकेत नहि दैत अछि, एहने बुझना जाइत अछि जे जीवनानन्द कोनो जीवित स्त्रीक विषयमे कहि रहल छथि जे ओछा-ओनपर पड़लि अछि—फेर दोसर पंक्तिक अन्तमे हिनक आशयक अनुमान लगवैत छी। तखन, ई जेना एक आघात दैत छथि—अंग्रेजीमे समाधि-प्रस्तरपर लिखल जायवला वाक्य—'हियर लाइज·····' क ई शाब्दिक रूपान्तरण लगैत अछि। एहि रूपें 'विलाड़' (पृष्ठ 36) कवितामे, यद्यपि ठीक इएह उक्ति व्यवहृत नहि भेल अछि—तुरन्त पाश्चात्य साहित्यमे सुपरिचित चिन्तनक संकेत भेटैत अछि। दुनू कवितामे आओर साम्य अछि—दुनू हठात् विवरणात्मक स्तरसँ ऊपर उठि क' अंतरिक्षीय उड़ानसँ भरि उठैत अछि। 'समाधि' क अन्तमे :

संध्याकाल केसरिया रंगक प्रकाश अछि
आकाशसँ लागल—अदृश्य विलाड़ि जकाँ,
जकर मुँहपर छै मुसकान चतुर-धूर्त्त।

एहि सभ कविताक कोनो-ने-कोनो अनुभूत स्रोत अछि, जकरासँ हम एहि बिम्ब सभकें जोड़ि सकैत छी— प्रकृति, नगरीय वातावरण, पाश्चात्य साहित्य, किन्तु ऐतिहासिक बिम्बकें हम ओहिसँ बाहर जा क' कतहु नहि ताकि सकैत छी— तथापि हिनक रचनाक ई शक्तिशाली आ आवर्ती अभिप्राय अछि। ई विधान हिनक सभसँ अधिक, हिनक सर्वाधिक प्रसिद्ध एक कविता 'बनलता सेन'क प्रारम्भहि मे अछि :

बीतल कल्प कतोक समुच्चा पृथ्वी लेलहुँ छानि
सिंहल सागरसँ लगाति मलयक खाड़ी पर्यन्त
टोइया-टापर देल कतोक अन्हरियामे, आ
अशोक आ विम्बसार—नगरीकें देलहुँ छाड़ि
—दूर अतीतक, आर दूर हम गुज अन्हारमे,
गेलहुँ विदर्भो। थाकि गेल छी—
दूर-दूर धरि अछि पसरल चहु दीस—जीवन-सिन्धुक फेन,
शान्ति देल जँ क्यो तँओ छलि-नाँटर वाली बनलता सेन।

समथक एकपेड़ियासँ, नहि जानि, कहियासँ चलि क' अबैत थाकल-हारल आत्माक अवधारणा जीवनानन्द दासमे एहि तरहें सन्निहित अछि जे हठात् एकर सतहपर आबि जायब हिनक कवितासँ अपरिचित पाठककें एक आघात द' सकैत अछि—'बेबिलोनक गली' (पृ० 35) सन कवितामे मूल कविताक शीर्षकक अनुवाद होयत 'गली होइत चलैत' :

आँखि जाइछ झुकि—जरि रहलै सिकरेट 'मौन' मे,
धूरा रहल हवामे उड़िया, खढ़-पातो उड़िया रहलै अछि,
बन्द आँखि क' टरि जाइत छी—ढेरक ढेर खरैल पात
झरि-झरि क' उड़ि रहलैक दूर धरि—एही तरहें,
गुमसुम एकसर राति-राति भरि बेबिलोनमे, कलकत्तामे,
हम बौअयलहुँ—किए ? कहत के ?
आइ हजारो वर्षक बादो।

कविताक प्रारंभ कलकत्ताक रात्रि-भ्रमणक मनोदशाक आकर्षक, स्पष्ट आ तर्कसंगत वर्णनसँ होइत अछि, किन्तु अन्त अबैत-अबैत बेबीलोन कें हमरालोकनि दिस टपका दैत अछि तथा सुरक्षित लंगरस्थलसँ प्रकृतिवाद दिस ल' अनैत अछि।

जीवनानन्दक कवितामे ऐतिहासिक संदर्भक आ धिक्य अछि—इतिहासक साभान्य अर्थ आ काल तथा व्यक्तिक विशेष सन्दर्भमे सेहो—बेबीलोन, फोनेसिया एसीरिया, निनेवह (पश्चिम एशिया आ मिस्रक विलुप्त भेल सभ्यता जेना हुनका विशेष रूपें आकर्षक आ चामत्कारिक लगैत छलनि)पतंजलि, अम्बपाली, नागार्जुन, श्रावस्ती, कनफ्यूशियस, एतिला—किछु सय ऐतिहासिक नाममेसँ किछु अछि जे

हिनक रचनामे हठात् प्रकट होइत रहैत अछि। 'मकर रेखाक अंतिम राति' उपशीर्षक कवितामे कवि समयक ऐतिहासिक चेतनाक धाराक तुलना एक पक्षीक उड़ानसँ करैत छथि। बारम्बार आवयवाला चिड़ैक अभिप्राय 'सूर्यक इजोतमे' (पृष्ठ 48) तथा अनेको कवितामे, बादमे, देखल जाइत अछि। कालबोधक समान हिनकामे स्थान (स्पेस) बोध सेहो कोनो कम नहि अछि—मलाया अथवा मिस्र अतलान्तिक महासागर, बैरीनक खाड़ीक प्रसंग बेर-बेर अबैत अछि आ सर्वथा अचानक। जीव-जन्तुक संसार सेहो हिनक कवितामे अपन भाग रखैत अछि (बहुत-किछु एडिथ स्टिवेलक सदृश), मुदा कखनहुँ-कखनहुँ अत्यन्त अकाव्यात्मक ढंगसँ, मरैत धवाह घोड़ा, आन्हर थरथराइत बूढ़ उल्लू, हंस, ऊँट, स्वर्णिम सिंह, गिद्ध, बूढ़ बेंग, मच्छड़। फूलक अनुपस्थिति विस्मित करैत अछि, मुदा वृक्ष आ पादप, अपन पूरा परिचितिक संग विशेष रूपें उपस्थित अछि। जीवनानन्दकें 'सुन्दर' आ 'काव्यात्मकता' क लेल सजगता नहि छनि आ ने एकरा सभक पाछाँ अपन कोनो नव परिपाटी बनबैत छथि।

रक्त, थूक, कूड़ा-कर्कटसँ माछी उड़ैत अछि रौद दिस,
कीड़ा-फनिगाक चमकैत पाँखि देख 'मे अबैत अछि स्वर्णिम किरण-मध्य।

कुरूपता अर्थवान भ' जाइत अछि—आ दृष्टिक शक्तिसँ सुन्दरो भ' उठैत अछि—नलसँ पानि चटैत कोढ़ि, मुँहमे रक्तक फेन लगबाक कारणें मरैत प्लेगक मूस, मसहरीक भीतर कोनी तरहें प्रवेश करबा लेल प्रयत्नशील मच्छड़, धुआँ उगलैत मोटरगाड़ी सेहो अछि आ एकरा संग रमणीय कुमारिलोकनि जे विसर्पण करैत छथि सुगंधक पिंडमे, पानिमे हेलैत हंस, जंगलसँ बहराक' इजोरिया रातिमे अबैत गीदड़ सेहो।

हिनक कविता हमरालोकनिक हृदये टा कें नहि बन्हैत अछि, अपितु हमरा लोकनिक बौद्धिक शक्तिकें सेहो सक्रिय करैत अछि। हिनक कविताक शक्ति प्राप्त होइत अछि ओहि स्फूर्तिदायक सम्बन्धसँ जे कवि हठात् स्थापित करैत छथि ; देश-कालमे पसरल वस्तु आ बोधक शृंखलाक बीचक सम्बन्धसँ। 'बनलता सेन' मे बोधक शृंखलाक स्थानान्तरणक इएह शक्ति देखल जाइत अछि :

ओस-बिन्दु सन बिला जाइछ दिन—साँझ पड़ै अछि
रौदक गंध पाँखिसँ लै अछि पोछि चिल्ह—मुरझा जाइत अछि।

वीर सावरकर आ नारीमन एटिला आ मार्क्ससँ कान्ह रगड़ैत छथि, नागार्जुन किंवा संधमित्रा टाइम्स आफ इंडियासँ, मध्य एशियाक घासक मैदान बंगालक ग्रामक कोनी पोखरिसँ। अत्यधिक काल्पनिक स्थिति सभक विशेष संदर्भ छैक। नामक आधिक्य अछि—सुचेतना, अरुणिमा सन्याल, अनुपम त्रिवेदी, मृणालिनी घोषाल, सुविनय मुस्तफी, लोकेन बोस तथा नाँटरवाली बनलता सेन, जकरा ल' क' बहुत गम्भीरतासँ हिनकासँ जवाब तलब कयल गेल छल।

की जीवनानन्द दासक कविता सम्पूर्णत: पलायनवादी छल ? एकर स्पष्ट उत्तर होयत 'नहि' । ओहि कविकें के पलायनवादी कहत जे लिखलनि :

सुनाइ पड़ैछ कतहुसँ पाँखिक फड़फड़ायव
कतहु सँ अबैत अछि समुद्रक संगीत,
उषा—करैत अछि कतहु हमरालोकनिक प्रतीक्षा ।

वेर-वेर जीवनानन्द दुरवस्थापर विचार करैत छथि, एकर अपर्याप्ततापर शोकाकुल होइत छथि, मुदा भविष्यक प्रति अपन आस्था प्रकट करैत छथि :

फाड़' एहि अन्हारकें आयल छी,
अपनहिं की गेल छी फँसि अन्हारक घेरामे ?
नः नः—फाड़बाक तँ अछिए अवस्स
दूर धरि—कोसो—मन्त्रमुग्ध—
दूर धरि—समुद्रमे,
चन्द्रोदय भेल नहि कि पक्षी उड़ैत अछि,
हमहूँ तँ चाहै छी उड़िए जाइ
—चानकें विसरि क' ।

('सूर्यक इजोतमे')

एकर अर्थ स्पष्ट भ' जाइत अछि, जखन हम ई स्मरण करैत छी जे समुद्रक पार उड़ैत पक्षी जीवनानन्दक हेतु ऐतिहासिक चेतनाक उद्घोषित प्रतीक थिक ।

जीवनानन्दक शब्द-मंडारमे वेर-वेर व्यवहृत एक शब्द अछि 'तथापि' । वर्तमान मानवीय स्थितिजन्य हिनक वेदना आ एहि स्थितिसँ मानव-मुक्तिमे हिनक आस्थाक सम्बन्ध एहिसँ प्रकट होइत अछि । कखनहुँ-कखनहुँ विशेष रूपें हिनक प्रारंभिक कवितामे ई पीड़ा असहनीय लगैत अछि, आ मनुष्यक आत्मा—जाहिपर इतिहास कतेक आघात कयने अछि—ओतहि घृरि क' जाय चाहैत अछि जत'सँ ओ आयल छल—मृत्युक अन्तर्गत, गर्भक अंधकारमे । एहि पीड़ाक क्रन्दन प्रबल आ विरोधरहित अछि तथा मृत्युक इच्छा संकोचरहित :

देखल अछि—रक्तिम आकाशमे उगैत सूर्यकें
आदेश अछि ओकर—उठू,
तनि क' ठाढ होउ संसारक सोझाँ,
आ, लवालव भेल अछि हृदय हमर—
वेदनासँ, घृणासँ, आक्रोशसँ,
सूर्यक प्रखर प्रकाशमे भरि गेल अछि पृथ्वी
कोटि-कोटि सूगरक आर्तनादक उत्सवसँ
चाहल हम—डुवा दी सूर्यकें

अपन हृदयक घनान्धकारमे,
निद्रामे चल जाइ, अपनाकें डुबा दी अन्हारमे,
मङैत छी गाढ़ निन्न, गाढ़ इच्छा सन—
किए हम जगाओल जाइ ?

('अन्हार')

'तथापि' क समान बेर-बेर व्यवहृत होबबाला शब्द अछि 'कहुखन' (some time), जे समयक कोनो बिन्दुपर कतिपय प्रयत्नोपरान्त मनुष्यक मुक्ति दिस संकेत करैत अछि, 'प्रतीक्षा' क' रहल अछि कतहु उषा हमरालोकनिक। यत्न अपरिभाषिते रहि जाइत अछि, किन्तु हिनक कविताक प्रवृत्तिसँ हमरालोकनि एहि निष्कर्षपर पहुँचि सकैत छी जे ओ लोकनि ईमानदारी, साध्य एवं साधनक पवित्रताक दिशामे रहैत छथि। भाग्यवश मनुष्यकें आत्मा छैक आ तें एक दिन ओकरा मुक्ति भेटतैक :

युग-युगसँ लहास अपन अपने कान्हपर,
मनुक्ख उघि रहल अछि,
मारि क' अपने भाइ-बहिनकें
लहू ओकर देखि क'
आत्माक पीड़ित दुर्गन्धसँ,
हाक दैत क्रन्दन करैत,
तारकें, आकाशकें, प्रेमकें,
चाहल अछि बोध—एहि सभसँ
लहू दाग धो देब' चाहल अछि,
क' की सकैत ऐना—आत्मा जँ रहितै नहि ।

('आनन्द')

वास्तवमे, जीवनानन्दक कवितामे जाहि शब्दक प्रयोग रहैत अछि, ओ अछि हृदय, आत्मा नहि, यद्यपि एहिसँ ओ जे अर्थक निष्पत्ति चाहैत छथि, ओ दुनू परस्पर लगभग 'विनिमेय' लगैत अछि।

एतहि लोक टैगोरक प्रवृत्तिक संगे जीवनानन्दक सामीप्य देखब आरम्भ करैत अछि, यद्यपि जीवनानन्दक 'मोहाबिरा' टैगोरसँ बहुत भिन्न छनि। उदाहरणार्थ टैगोरक 'फुफकारैत सर्प' (पृष्ठ 8) क तुलना जीवनानन्दक कविता 'अद्भुत अन्हार एक' (पृ० 56) क संग कयल जा सकैत अछि, यद्यपि दुनूमे टैगोर अधिक युयुत्सासँ भरल लगैत छथि, किन्तु जाहि मूल्य-विध्वंसकतासँ हुनका लोकनिकें अधिक आघात लगलनि अछि—ओ तत्त्वतः समान अछि। जीवनानन्द दासक कविता 'यात्री'

117149
9·12·04

(पृ० 54) एहि समानताकें असंदिग्ध रूपसँ रेखांकित करैत अछि—नित्य आत्मामे आस्था, पृथ्वीपर एकर प्रवास आ एकर अंतहीन यात्राक एहिसँ अधिक स्पष्ट रूपें वर्णन नहि भ' सकैत छल। टैगोरक अगणित कवितामे एहि विषय-वस्तुक गूँज अछि, अनुगूँज अछि, उदाहरणार्थ एक कविता लेल जा सकैत अछि :

पीड़ा आ मृत्युसँ तोपल अन्हारगुज्ज रातिमे
देखैत छी यदाकदा किरण-बिन्दु,
इशारासँ बजबैछ जे—कहि ने कोम्हर ल' जयवा ले'
जेना कोनो बटोही देखैत हो
खिड़कीक भीतरक प्रकाश,
एनमेन तहिना, किरण-बिन्दु ई
पहुँचैछ जे हमरा लग,
करैत अछि इंगित—
फाटि जायत अन्हार जखन—उद्घाटित होयत
एक समुद्र 'अवस्थिति' क—समयहीन,
जत' करैछ दिनकर सांध्यस्नान,
अनन्त बुलबुला जकाँ उगैत अछि, टुटैत अछि तारा,
ओतहि—रात्र्यंतमे—हम छी बटोही—
चेतनाक पसरल अन्तहीन सागरक।

(टैगोर: कविता संख्या 20, रोगशय्यापरसँ)

जीवनानन्दक आरम्भिक जीवनपर, पर्याप्त 'ब्राह्मो' प्रभाव छलनि—ओ प्रभाव, जाहिमे उपनिषदक नवजागरण सम्मिलित छल, टैगोर द्वारा एकर प्रबलीकरण भेल जे दुनू गोटेक बादक कविताक विषय-वस्तुमे बेर-बेर परिलक्षित होइत अछि, टैगोर (आ दांते एवं अन्य)क सदृश जीवनानन्द स्त्री-आत्माकें मुक्तिसँ सम्बन्धित बिम्बक संग तादात्म्य स्थापित करैत छथि। प्रायः ई 'सुचेतना' सँ प्रारम्भ होइत अछि जे किछु समीक्षकक अनुसार हिनक कविताक सकारात्मक पक्षकें चिह्नित करैत अछि। बादक वर्षमे ई स्त्री-आत्मा हिनक रचनामे शरण-स्थल मात्र नहि अछि, विस्मृतिमे घूरि जयबाक बिन्दु नहि अछि, मृत्यु—इच्छाक गर्भ—अन्धकारमे परिणति नहि अछि, ओ समर्पित जीवनक अधिक शुद्ध-बिम्ब बनि गेल अछि आ पवित्रताक एहन दृष्टि, जे तात्कालिक कुरूपतासँ दूर अछि।

जीवनानन्दक प्रारंभिक रचनामे किशोरावस्थाक स्वच्छन्दता टैगोरसँ भिन्न नहि अछि। 'झरा पलक' (झरल पाँखि) क अधिकांश कविता आ किछु 'धूसर पाण्डुलिपि' क कवितामे टैगोरक कविता 'निनर्झरेर स्वप्नभंग' (निर्झरक स्वप्नभंग)

मे साम्य छैक—ई आओर नीक जेकाँ देखल जा सकैत अछि यदि जीवनानन्दक कविताक तुलना सुधीन्द्रनाथ दत्त, विष्णु दे किंवा अमिय चक्रवर्ती, जे हिनक पीढ़ीक छलथिन, अथवा समरसेनक (जे किछु बादमे अयलाह) प्रारंभिक रचनासँ कयल जाय। तुलनामे दोसर कविसभ निरन्तर अधिक नियंत्रित आ आत्मसजग, अधिक शान्त आ अधिक बौद्धिक लगैत छथि। रवीन्द्रनाथक सदृश जीवनानन्दक प्रारंभिक कविता भावावेशक स्वच्छंदताक होइतहुँ व्यंजनात्मक अछि आ तथ्य किंवा रूप-विधानमे संक्षिप्तिक अभाव रहितहुँ शक्तिशाली अछि। अनन्तक प्रति अस्पष्ट इच्छा दुनू गोटेक किशोरावस्थाक असम्बद्ध विचारमे समान रूपें छनि। बीचक अविधमे दुनू गोटेक जीवनदृष्टिक आविर्भाव आ समेकीकरण तथा हुनका लोकनिक संवेदनशीलताक प्रमुख लक्षण देखबामे अबैत अछि। सभसँ बादक अविधमे शंकाक अनेक स्थिति शनैः-शनैः विश्वासक प्रशान्तिक दिस हुनकालोकनिकें ल' गेल छनि।

किन्तु, टैगोरक बहुमुखी प्रतिभा सम्पूर्ण योगफले ओ कारण नहि अछि जाहिसँ अपन बादक पीढ़ीपर हुनक प्राधान्य रहल अछि। कविक रूपमे जीवनानन्दक संवेगात्मक शक्तिकें टैगोरक दार्शनिक स्पष्ट संरचनाक आधार नहि छनि। हिनक आध्यात्मिक परिपृच्छा ने बहुमुखी अछि आ ने सुव्यवस्थिते। हिनक अस्तित्वक रचनामे संवेगे सर्वोपरि अछि—बौद्धिकता नहि। हिनक तीव्र आत्मपरकते हिनक शक्ति आ अशक्तता दुनू अछि। शेलीक 'ओड टू द वेस्ट विण्ड' (पश्चिम-हवाक प्रति सम्बोधन-गीत) शक्तिशाली ढंगसँ संवेगात्मक अछि, किन्तु ओ अपनासँ बाहरक वस्तुकें सम्बोधित अछि जकर अस्तित्व कविपर निर्भर नहि छल। जीवनानन्दक 'बिहराओन राति' (पृष्ठ 40) चरम आ ऐकान्तिक भावें जेना हिनके भीतर घेरल अछि। जीवनानन्द शेलीक 'बोनापार्टक पतनपर एक प्रजातांत्रिक अनुभूति' किंवा रवीन्द्रनाथक 'अफ्रिका' सन कविता मानू कहियो ने लिखितथि। हिनक 'जूह' अथवा 'अनुपम त्रिवेदी' सन व्यंग्य कवितासभ अप्रत्यक्ष रूपें समकालीन व्यक्ति सभक प्रसंगमे अछि—किन्तु विना कोनो संपृक्तिक। हिनका 'एकान्तक कवि,' 'कविक कवि,' 'कालक कवि' कहल गेल अछि, मुदा कोनो राजनीतिक अथवा सामाजिक दर्शन हिनकापर अपन अधिकार नहि जनौलक अछि आ ने केओ हिनक समकालीन विशेष घटनासँ हिनका जोड़ने अछि (जेना टैगोरकें)। हमरालोकनिक समयक (आ इतिहासमे) लोकक अवस्थासँ गम्भीर रूपें सम्बन्ध छथि, मुदा जेना अपने भीतर अन्तर्मुखी भ' क'—कोनो समकालीन घटनाक प्रति कोनो प्रतिक्रिया व्यक्त कयने बिना। हिनका सन संवेदनशील कविक सन्दर्भमे ई आश्चर्यजनक बूझि पड़ैत अछि।

अपन स्वीकरणमे, कमसँ कम, ई टैगोरक बहुत निकट छथि। टैगोर सेहो मानवीय नियतिक व्यापक प्रवर्ग आ सूक्ष्म दृष्टिसँ सम्बन्ध रखलनि। मुदा,

रवीन्द्रोत्तर कालक अधिक यथार्थता आ शीघ्रतापूर्वक बढ़ैत संसूचनक निकटतामे ओहि कालक दोसर कविसभक तुलनामे, जीवनानन्दक प्रतिक्रिया बहुत विस्तृत आ सामान्य लगैत अछि। आत्माक अमरता आ मानव-चेतनाकें विनष्ट नहि होय-बामे रवीन्द्रक जे आस्था छलनि, से ओहि कालक अत्यन्त सुविकसित सामाजिक चिन्तनक संरचनामे योगदान कयलक आ ई हिनका लोकनिक लेल उपयुक्तो छल। जीवनानन्दक नैराश्यक प्रावस्थामे हिनक सूक्ष्मदृष्टि सतत तीव्र रहल, समकालीन मूल्यक प्रति हिनक असंतोष अत्यन्त व्यक्तिगत आ भेद्यपूर्ण रहल, मुदा हिनक स्वीकरण, यथा 'यात्री' कवितामे प्रकट अछि, कृत्रिम बूझि पड़ैत अछि आ कोनो नव गम्भीर संश्लेषणक प्रतीति सेहो नहि होइत अछि, जे हिनक व्यक्तिगत अनुभूतिसँ अद्भुत होयबाक परिचायक हो। यदि दोसराक स्वीकरण एहि कारणे निस्सार छल जे ओ कोनो सामाजिक-राजनीतिक दर्शनक बलकृत अनुगूँज छल तँ जीवनानन्दहुक ई पक्ष संक्षिप्त आ वैयक्तिकताक कारणे अशक्त छल। एतेक दूर धरि जे 'यात्री' अथवा 'दुनू रास्ता' कवितामे विम्वविधान पूर्वक सन व्यक्तिगत नहि अछि आ एहि कवितामे शब्द-प्रयोग हिनका रवीन्द्रक सन्निकट ल' जाइत अछि।

जीवनानन्दक स्वीकरण रवीन्द्र-ब्राह्मो समाज-दर्शनक मुख्य आधारहिपर घूरि क' अबैत सन लगैत अछि। पर्याप्त समयक उपरान्त टैगोर जखन, वस्तुतः अपन तामसक क्षणमे, अपन औपनिषदिक संश्लेषणक असफलता देखलनि आ लिखलनि जे 'शान्तिक स्वर्णिम शब्द' फुफकारैत साँपक 'निस्सार लागत' तथा दैत्य सभसँ युद्धक हेतु सभक आह्वान कयलनि, तखन जीवनानन्दक अन्वेषण रवीन्द्रक व्यापक मूल्यक पुनर्स्थापनाक कारण बनल। हिनक सर्वोत्तम कविताक मानक (श्रेष्ठ कविता) क अंतिम कविताक अंतकें लेल जाय :

संसारक भयानक हाहाकारक बीचसँ
उठैत अविनाशी स्वर लहराइत अछि
गरिमाक आनन्दित प्रकाशित
अनन्त ऐश्वर्यपर।

('दुनू रस्ता')

ईहो निष्कर्ष निकालल जा सकैत अछि जे जीवनानन्द स्वातन्त्र्योत्तर भारतक अधिक कठिन सन्दर्भमे रवीन्द्रक मूल्य-जगतक जीवित नहि रहबाक दुःखद असफलताक प्रतिनिधित्व करैत छथि। डब्लू० बी० ईट्स जकाँ, जनिक ई प्रशंसक रहथि, इहो कहैत छथि :

आस्मानी अस्पष्ट काल अछि निर्वन्ध,
आ सभतरि सरलताक उत्सव अछि निर्बाध

सभसँ नीक छथि, आस्थाहीन, आ जे छथि अधमतम कोटिक
छथि पीड़ित वासनाक प्रगाढ़तासँ ।

यद्यपि जीवनानन्दकें पालायनवादी कहब अथवा मानवताक प्रति हिनक गहन सम्बन्धकें नहि देखब उचित नहि होयत, मुदा हिनक आकारहीन सामाजिक कथ्य अथवा हिनक सामान्यीकृत स्वीकरणक अपेक्षा हिनक कविताक शक्ति हिनक पीड़ामे, हिनक ऐन्द्रिकतामे, व्यक्तिगत आ समकालीन सौन्दर्य एवं आत्म-तल्लीनता मे अधिक अछि ।

किन्तु, अपन शक्तिक दिशामे जीवनानन्द दोसर कवि लोकनिक अपेक्षा ततेक दूर धरि चल गेल छथि जे लोक हिनक दार्शनिक समस्याकें एकाकी छोड़ि देवामे सहमत भ' जाइत अछि । 'स्वप्न' कविताक अपार कोमलता आ आंतरिकता, 'लघु मुहूर्त्त' कविताक कटु व्यंग्य, अनुपम त्रिवेदी (पृ० 55) क विचार-वर्णनक शक्ति, 'प्रोफेसर'क व्यंग्य, 'चिल्होड़ि'क किशोर सरलता आ निष्कलुपता, 'विहारओन राति'क स्वच्छ कल्पनाशीलता, 'वनलता सेन'क नियंत्रित भावावेग, अद्भुत अन्हार एक' क प्रचंडता, 'विलाड़' क सौम्य दृष्टि, 'संतोला' क मार्मिक गहनता आ सरलता, 'सूर्यक इजोतमे' क स्वीकरणक शक्ति चाहे कतबो सामान्य किएक ने हो—किछु उदाहरणमेसँ अछि जे विविध परस्पर सुपष्ट भिन्न दिशामे हिनक अनुभूतिक विशिष्ट शक्ति अभिव्यक्तिक गहनताक प्रतिनिधित्व करैत अछि । जीवनानन्द दासमे हमरालोकनिकें एहन ऐन्द्रिक, ग्रामीण, प्रकृति-कविक दर्शन होइत अछि जकरा ग्रामीण परिवेशक ज्ञान आ गहन निरीक्षण-शक्ति छैक, जकरा एहन नगरीय आ समकालीन मानस छैक जे समय आ 'स्पेश' क व्यापकतामे एम्हरसँ ओम्हर विचरण क' सकैत अछि । ई एहन क्षेत्रीय कवि छथि जे अपन विशिष्ट परिवेशक संग तीव्र एकात्मकता चाहैत छथि, हिनकामे एक सार्वभौमिक चेतना छनि जे मानव-नियतिसँ गम्भीर रूपें जुटल अछि । हिनक अन्तरक कवि एहन विचारशील व्यक्ति अछि जे दार्शनिक-बौद्धिक विचार सभकें क्षमतापूर्ण ढंगसँ उत्तेजक कवितामे राखि सकैत अछि, एक एहन व्यक्ति जे परम्परासँ ओतप्रोत अछि, मुदा परिपाटीसँ मुक्त ।

एतेक प्रज्वलित अनुभूतिक संगे एतबा करब कोनो कविक लेल एक कठिन कार्य अछि । संभवतः ई उपलब्धि कोनो दोसर समकालीन कविक नहि छनि ।

4 अनुवाद[1]

धूसर पाण्डुलिपि	1936
बनलता सेन	1942
महापृथ्वी	1944
सातटि तारार तिमिर	1948
श्रेष्ठ कविता	1954
रूपसी बांगला	1957
बेला अबेला कालबेला	1961

1. एहि पुस्तक सभ अनुवाद अंग्रेजीसँ डा० मदनेश्वर मिश्र कयने छथि ।

मृत्यु-पूर्व आओर की ?

शरदक संध्या, सुन्न बाधसँ होइत जखन हम जाइत रही तँ
देखल फूल छिटैत नदीमे, बनल कुहेसक झलफल-झलफल,
स्त्री-आकृतिकें : आकृति जे अस्पष्ट अतीतक, दूर देहातक
भगजोगनीसँ भरल-सजल तरुकें हम देखल,
देखल बिना जजातिक बाधक ऊपर गुमसुम भेल चानकें।

हमरा-सन, जकरा सोहाइ छै राति अन्हरिया जाड़क बड़की,
मुग्ध रातिमे घास-पातपर सुनल फड़फड़ाहटि हम पाँखिक,
बुढ़वा उल्लुक चिन्हल गन्ध—जे बिला गेल अछि
गुज अन्हारमे।
जड़काला रातिक ऐश्वर्यक अनुभव हमरा—
एक बाधसँ दोसरमे, पुनि तेसरमे···एहिना फड़-फड़-फड़
राति रहल उड़ि,
सुनल अहा ! झंखाड़ गाछकेर कोनो डारिपर—सारस बाजय,
हमरा-सन, क्यो जे जिनगीकेर गुप्त रहस्यक पता लगाओल।

हम जे देखल व्याधक शरसँ बाँचि गेल जङली पडबाकें
नील गगन-तल अहा ! इजोरियामे
ऊड़ि रहल अछि
ऊड़ि रहल अछि···
उड़िते-उड़िते जैत क्षितिज धरि।
हम जे मृदुल स्पर्श कयने छी धानक सीसक
हम जे साँझक कौआ-सन अति उत्कंठित—घरमुहाँ भेल छी
छी सुँघने नेनाक मूँह, खढ़-पात, रौदकें, पक्षीकें, नक्षत्र-गगनकें,
वर्ष-चाकपर नाचि रहल एहि सभक चेन्हकें।

देखल हमरा, शरद रातिमे, हरियर पात पिरा जाइत अछि,
गाछक खिड़की पर प्रकाश आ पक्षी कलरव-खेल करै-ए
चिक्कस-सन लसलस, रेशम-सन चिक्कन मुसरी।
ल' जाइत अछि, चाउरक सौरभ, एकसरुआ क्यो

भरि-भरि मत्स्य आँखिमे—सेहो हमरा देखल ।
अहा ! तड़ागक ओइ मोहारपर, गुज अन्हारमे, निद्रित हंसकें
जेना कोनो सुन्दरी, अपन मृदु कर-स्पर्श सँ
ल' जा रहलि सुदूर-सुदूर कतहु ओकरा अछि !

जङला खोलि खिचैत जेना हो स्वर्ण-कान्ति मोहक टिकुलीकें,
मेघ—स्तम्भ सन,
वेंतक जड़िमे नील-नील बगड़ा-अंडा हो !
धार—लगा जनु जल-फुलेल हो वेर-वेर नहवैत घाटकें,
इजोरियाक खरिहान—
ओहिपर खढ़-छारल चारक छाहरि जनि छपा जाइ अछि,
झिगुर जेना हवाकें वोझिल बना रहल अछि,
हो-इत शुभ्र आ नील, ढालुपर, ससरल अबै गाढ़ आकांक्षा ।

देखल हम जे सघन गाछ तर लाल-लाल फल,
खसल-पड़ल अछि,
देखि रहल अछि खेत—नदीमे अपन छाँहकें,
नील गगनकें छैक सेहन्ता रंग ओकर हो आर गढ़तार
आँखि जेना विटिआबय पथकें—ओहि वाटकें
जे वसुधाक पार धरि पहुँचै ।

देखल हमरा, साँझ गगनसँ उतरि रहल अछि
गुआ-गाछसँ क' रहलै जे लट्टा-पट्टी
प्रतिदिन अहल भोरमे जे मिलि जाइ सहज खिच्चा दाना-सन
दिन आ मास, मास आ ऋतुकें, जानि चुकल छी ।

जानि चुकल छी, कोना अबै छै धरती-कन्या,
कहय कानमे गुपचुप हमरा नदिक पिहानी—एकरा टपिक' ।
जानि चुकल छी आर एकटा छै प्रकाश जे
वाट, घाट आ बाधक भीतर : अपन
धूसरित तनकें रखने ।
आँखिक डेन छोड़ि देखियौ तैं : एकमात्र अछि वैह किरण स्थिर
ओतहि सुन्दरी बास करै अछि—धूमन अगरु सदृश
छिटैत मोहक सुगन्धकें—सगरे मुलुकक !

मृत्युपूर्व जनबाक शेष की ? बूझल नहि अछि ?
कोना उठै छै प्रति आकांक्षा केर उपरसँ ज्वारि तीव्रतर,
खाली ठाढ़ देबाल धूसरित मृत्यु-मुखक अछि ?
धराक सभ टा स्वप्न-सम्पदा पाबि जाइत अछि शान्ति निरुत्तर ?
आब आर की शेष बुझक अछि ?
सूर्य अस्त भेलापर हम की चिड़ै-चुनमुनिक चीख सुनल नहि ?
कौआकें कुहेसमे उड़िक' लुप्त होइत की हम नहि देखल ?
(मृत्युर आगे : धूसर पाण्डुलिपि)

गिद्ध

एशियाक गगन-पार, प्रकाशमे बेरुका उखड़ाहाक,
बड़की ट-टा इलाकाकें टपैत-टुपैत,
चकभाउर दैत अछि गिद्ध ।
मनुक्खक बासासँ दूर—बहुत दूर
निस्तब्ध छोरपर
पाँखि फड़फड़बैत अछि गिद्ध !
पृथ्वीक स्तब्धता जत' एक आर आकाश जकाँ पसरि जाइत अछि
ठीक ततहि, एक बेर फेर, मेघकें फाड़ैत,
उतरैत अछि गिद्ध !
धुआँसँ घुरिआइत जेना हाथी मेघक
घुरि जाइत अछि,
बिद्ध तहिना अदृश्य प्रकाशसँ,
भ' जाइत अछि धराशायी, एक छनक लेल !
उड़ि जाइत अछि पुनः ताल-वृक्षपर, विशाल पाँखिबला ताल-वृक्षपर
—शिखरसँ शिखर पर्यन्त,
तरंगायित सागर धरि—देखैत छी अन्हार-गुज्जमे लंगर दैत अछि
कोना-कोना बम्बै-बन्दरगाहमे जहाज एक बेर,
उड़ि जाइछ स्निग्ध मलावार धरि—घेरिक'
एक अदृश्य मीनारकें अनेकानेक गिद्ध,
छोड़िक' सभटाकें पाछाँ—पृथ्वीक आन-आन पक्षीकें,

वढ़ले चल जाइत अछि जेना कोनो मृत्युक पार !
कतहु, अतल-तलमे करैत वैतरणी केओ—क्रन्दन दारुण
किंवा, कोनो झील दलदल—जीवनक एहन विच्छेद-पल
हेरि-हेरि—नील-नील सुदूर आकाशमे ।

(शकुन : धूसर पाण्डुलिपि)

बनलता सेन

वीतल कल्प कतोक, समुच्चा पृथ्वी लेलहुँ छानि
सिंहल-सागरसँ लगाति मलयक खाड़ी पर्यन्त
टोइया-टापर देल कतोक अन्हरियामे, आ
हम अशोक आ विम्वसार नगरीकें देलहुँ धाङि
—दूर अतीतक, आर दूर हम गुज अन्हारमे
गेलहुँ विदर्भो । थाकि गेल छी—
दूर-दूर धरि अछि पसरल चहु दीस—जीवन-सिन्धुक फेन
शान्ति देल जँ क्यो तँ ओ छलि—नाटरवाली वनलता सेन !

केश ओकर विदिशाक अन्हरिया राति निविड़ हो !
आनन—हो श्रावस्ती-शिल्पित, दूर समुद्री जोर हवामे
टूटल हो पतवार—भेल दिग्भ्रान्त मलाहो,
तखनहिं ओ जनि देखि लैत हो अनचोकेमे हरित पत्रयुत द्वीप,
तहिना ठीकम-ठीक—ओकरो देखने रही अन्हारेमे हम
'कत' रहिंह एतवा दिन कह तों ?—ओ पुछने छलि
बगड़ा-खोंता सदृश आँखिसँ नाटरवाली बनलता सेन !

ओस-विन्दु सन बिला जाइछ दिन—साँझ पड़ै अछि
रौदक गन्ध पाँखिसँ लै अछि पोछि चिल्ह—मुरझा जाइत अछि
कोलाहल निस्तब्ध, मात्र भगजोगनी टिमटिम
सादा कागत—गाढ़ राति केर कथा जाहिमे लिखल जैत से,
चिड़ै-चुनमुनी—नदी-धार सभ—भेल घरमुहाँ,
जीवन केर आदान-प्रदानो चुकि जाइत अछि
शेष अन्हरिया राति मात्र—आ सोझाँमे बनलता सेन !

(बनलता सेन : बनलता सेन)

संतोला

एक वेर मरि गेला उत्तर
फेर घूरि क' आयब नहि की हम पृथ्वीपर ?

जँ आवी तँ
आबी पुनि हम शिशिर-रातिमे
विकल प्राण-हित
कोनो चिन्हारे
रोगीक सेज-समीप धयल टेबुलपर राखल
अध-खायल
शीतल अः ! सोहल
एक करुण संतोला बनिक' ।

(कमलालेबू : बनलता सेन)

सुचेतना

दूर—बहुत दूर—साँझक तरेगन-सन
एकटा तों द्वीप छह सुचेतना,
दालचीनीक अकाबोनक बीच···
ओत' शान्ति अछि ।

रक्त पृथ्वीक, संघर्ष, गौरव···
सत्त तँ सभ थिके, मुदा अन्तिम सत्य नहि ई ।
बनि जाय स्वर्गक गौरव एक दिन कलकत्ता
किन्तु, रहय हमर ई हृदय तोरे टा ।

थका देलहुँ हम अपनाकें, पयर हमर खिया गेल
अर्पित करबा ले'—जे मनुक्खक बखरा अछि···
अग्निवर्षी रौदमे आखरी छी थाकल हम ।

जा-जाक' प्रेम करैत लोककें देखने छी,
मुदा, हमर बन्धु-बान्धव, परिजनगण,
आहत सभ भेल छथि हमरे एहि हाथें, पड़ल छथि मुइल ।
पीड़ापूर्ण धरती ई,
किन्तु छी ऋणी···रहबे करब आओर ।

देखल अछि जहाजकें बंदरगाहमे लंगर दैत,
तपैत रौदमे—मृतकक असबाद लदने,
कतेको कंकाल जीवक—
उठैत ओहिमे मृत्युक विस्मय ।
चकचोन्ही लगबैत···चुप क' देल हमरा
जेना बुद्ध कनफ्यूसियसकें छल कयने,
एकरा अछैतो, करैत अछि विश्व त्राहिमाम
दैनन्दिन जीवनक ।

जीवनकेर बाट ई, सुचेतना
बाट ई मुक्तिक
होयत ई पूर मुदा युग-युगक बाद महत् यत्न-प्रयत्नसँ ।

बसातमे केहन अछि रौदक ई स्पर्श,
एन-मेन एहने अछि संसार रचबाक—
दूर एखन लगै-ए से—थाकल सन छी मुदा
हाथ हमर हारल नहि। एक दिन···
ओ दिन हो दूर भने
मुदा ओकरा आब' तँ पड़तै निस्संशय ।

पृथ्वी छल हाक देने—हमरा जन्म लेब' ले'
लोकक घर हमरा नहि चाहै छल एहि रूपें जयबाक,
जनितहुँ ई, अयलहुँ हम
जनैत छी अपन एहि आगमनक माने हम ।
ओह ! केहन दिव्य हमर काज ई—
जानल ई अहल भोरमे हेमाल ओसकें
छुबि-छुबिक' पात पर !

होयवाक जे—होयतै सैह् जीवनमे—देखल अछि
होयतै नहि—सम्प्रति जे देखै छी हम से,
शाश्वत अन्हारोमे अनन्त एक सूर्योदय।

(सुचेतना : बनलता सेन)

बेबिलोनक गली

अनजानल हम जेना कोनो इंगितिपर सोझे बढ़ल जाइ छी
देखल हम—अछि दौड़ि रहल बस, ट्राम, पुनः ओ
बाट छोड़ि क', सूति रहै अछि ओ प्रगाढ़ निद्रामे रातुक।
सभ ले' सौंसे राति ठीकसँ जरि रहलै अछि बाती गैसक
किन्तु वरंडा, घर, छत खिड़की तथा नामपट—
सभ सूतल अछि: एकाकी हम बढ़ि रहलहुँ अछि स्तब्ध बाटपर
एकरा सबहक रोम-रोममे दर्द-कथा छै—जानल हमरा।
तखन कते छल राति—तरेगन मनूमेंटपर
निर्जनमे, हम एहिसँ बेढ़ल सोचि रहल छी—
एहिसँ अधिक न किछु सम्भव की : भरल विशाल-विशाल स्तम्भसँ
अहा ! केहन नक्षत्र-नगर ई !

आँखि जाइछ झुकि—जरि रहलै सिकरेट 'मौन' मे,
धूरा रहल हवामे उड़िया, खढ़-पातो उड़िया रहलै अछि
बन्द आँखि क', टरि जाइत छी—ढेर ढेरक खरैल पात
झरि-झरि क' उड़ि रहलैक दूर धरि—एही तरहें
गुमसुम एकसर राति-राति भरि बेबिलोनमे, कलकत्तामे
हम बौअयलहुँ—किए ? कहत के ?
आइ हजारो वर्षक बादो !

(पथ हाँटा, बनलता सेन)

लहास

बेंतक जंगलमे—जत' जलमे उतरैत अछि चान
मच्छरक झुंड जकरा बनौलक अछि बासा अपन

खोंटि-खोंटि खाइत अछि सोनहुला माछ चुपचाप
मग्न भेल अपनामे नील-नील मच्छरकें !

क्षितिजक छोरपर, जत' माछेक रंगमे नदी रङा जाइत अछि,
बाध अछि एक अलगल, पैघ-पैघ घाससँ भरल,
पड़ल अछि बगल ।

जल एकरे, एही नदीक—देखिते रहैत अछि
लाल टेस मेथ चुपचाप ।

किंवा, हो तारा-भरल निशा-अन्धकार ओ :
झुकबैत हो माथ जेना नील अलकबाली एक स्त्री खोपासहित

कोन कमी दुनियाँमे नदीक, किन्तु नदी तँ यैह:
लाल टेस मेघक—चन्द्रिका हो बिछायल जेना अनेको आकारक

एतहि अन्त होइत अछि—प्रकाश, अन्धकार—सभक,
के बचैछ :
खाली वैह लाल मेघ, बस, वैह नील माछ, वैह मौन चन्द्रिका ।

एतहि दहा रहल अछि मृणालिनी घोषालक लहास
लाल आ नील आ सोनहुला चुपचाप ।

(शव : महापृथिवी)

बिलाड़

दिन भरिमे अभरि जाइछ बेर-बेर बिलाड़
गाछक छाहरिमे, रौदमे, बदामी पातक झोंझमे

कँटाह माछक खंडकें समटिक'
सन्तुष्ट बुझाइत अछि ।
चल जाइछ पुनः चिक्कनि माटिक भीतर
पड़ल रहैत अछि मग्न भेल—मधुमाछी-छत्ता सन बनौने स्वयंकें,
कखनहुँ पुनि गुलमोहरक डंटाकें चाङुरसँ खोखरैत—
देखल हम ओकरा
दिन भरि ओ सूर्यक पछोड़ धयने दौड़े-ए
कखनो उगैत अछि
कखनो बिला जाइत अछि ।
हेमन्तक संध्यामे सिन्दुरी दिनमणिकें
अपन श्वेत चाङुरसँ—देखल से।
पुनः उठबै-ए अन्हारकें छोट-छोट गेन जकाँ
चाङुरसँ चापिक' तथा पसारै-ए ओकरा
सम्पूर्ण धरापर—सेहो हम देखल ।

(बिड़ाल : महापृथिवी)

एक दिन, आठ वर्ष पहिलुक

ओकरा मुर्दघट्टीमे ल' गेल छै—बाजल ओ
काल्हि, शुक्ल पंचमीक राति, जखन अस्त भेल चन्द्रमा
पसरल अन्हार—मरबाक ओकरा तीव्र उत्कंठा भेलैक !

पत्नी आ नेना ओकर सुतल छलै लगेमे
तैयो ओ देखलक, कोन प्रेत इजोरियामे ल' गेलै ओकरा
प्रेमक आ आशाक ओहि पार ? जागि गेल कोना ओ ?
सूतल की कतोक दिनसँ नहि छल ओ ! की ओ विचारलक
जाक' मुर्दघट्टीमे सूतत ग' चैनसँ ?

एहने निद्राक की कामना छलै ओकरा
प्लेग-पीड़ित मुसरीक निन्न···मुँहसँ रक्त-वमन
गरदनिकें धसौने कोनो दरारिमे
जाहिसँ नहि ओकरा फेर कहियो पड़ै जाग' ?

कहियो नहि जागत ओ
सहत नहि बुझबाक किछु असहनीय भार फेर
बेर-बेर, बेर-बेर—
चान अस्त भेलापर ऊँटक गरदनि जकाँ
चुप्पी एक आबिक' पसरि गेल ओकर खिड़की धरि—
बाजल ओ।

जगैत अछि उल्लू, चाहैत अछि दीर्घजीवन
ताहूपर। पीयर ढावुस मङैत छैक दू पलक भीख आर,
—उत्साहित होब' चाहैत अछि
अगिला भोरक निमित्त।

मुसहरीक चारू दिस
मच्छरक अविराम भनभनी छी सुनैत
अन्हारमे घेरिक' पहरा दैत प्रेमसँ—जीवन भरि,
भने ओकरा लगै जेहन।

रक्त, थूक, कूड़ा-कर्कटसँ माछी उड़ैत अछि
रौद दिस
कीड़ा-फनिगाक चमकैत पाँखि देख'मे अबैत अछि
स्वर्णिम किरण-मध्य।

आकाश एक खिचायल···सम्मोहन जीवनक
अपन अंकमे एकरा लेनहि रहैत अछि।
बगड़ा छटपटाइत अछि उकाठी छौड़ाक हाथमे
जीवनक सिहरन लेने।
ताहूपर, चान जखन अस्त भेल, हाथमे लेने जौड़ अहाँ
गेलहुँ वड़क गाछ दिस।
(जीवन ई कीड़ा आ फनिगाक,
लोकक छै चिन्ता कत' !—भरिसक विचार यैह !)

प्रतिरोध की कयलक नहि बड़क विशाल शाख ?
भगजोगनी जुटल नहि की चम्पा-फूलपर ?
बुढ़बा उल्लू लटपटाइत पयरे की आबिक' नहि कहलक—

'आबहु की पकड़ल नहि जाय मूस, डुबल चानो'
अहाँक कानमे गूँजल की उल्लुक नहि मन्त्र ई ?

जीवनक स्वाद आ हेमन्तक संध्याक, गंध पाकल जौक
लागल असह्य अहाँकें।
रक्त-रंजित मुँहवला, सुटकल मुसरी-सन
मृत्युमे की भेटल शान्ति अहाँक आत्माकें ?

तैयो हम सुनि ली एहि मृतकक पिहानी
प्रेमक नहि छलै कोनो असफलता,
विवाहित प्रेममय जिनगीक भीतरक सत्व सकल
छनि-छनिक' आवि गेल—
कतहु नहि फाँक छलै हृदय धरि
तैयो मृत, चचरीपर पड़ल अछि
मुर्दघट्टीमे।

जनैत छी—सत्ते की !
घर, नेना, पत्नी-प्रेम, अर्थ, कीर्ति,
सभ-किछू नहि यैह थीक।
किछु अछि भीतर हमर, रुधिरमे,
हमरा जे भीतरसँ खाली करैत अछि।
करैत अछि क्लान्त।
नहि अछि ओ क्लान्ति मुर्दघट्टीमे।
तें तँ पाड़ल अछि चचरीपर
मुर्दघट्टीमे।

नित्य तैयो देखैत छी हम रातिकें
बड़क डारिपर बैसल थरथराइत
ओहि बुढ़बा उल्लूकें (कहैत अछि नचाक' आँखि)—
'आबहु की पकड़ल नहि जाय मूस, डुबल चानो'

बाबा हे ! हे बाबा !
हमहूँ अहीं जकाँ चाहै छी बूढ़ होब'
जीब'
बुढ़वा चन्नाकें हम क' देबै ज्वारि-पार

पसरतै अन्हार जखन, हम-अहाँ विदा होयब—
मिलि-मिलि जीवनक विशाल भण्डारकें
खाली क'—दूर।

(आव बद्द आगेर एक दिन : महापृथिवी)

बिहराओन राति

कल्हुका राति छल बिहराओन—अनन्त तारा-भरल
भरि राति हमर मुसहरीमे बसात छल खेला रहल
कखनो समुद्रक ज्वारि-सन उठैत छल फूलि,
कखनो छोड़िक' बिछान हमर, उड़ि जाय चाहैत छल
तरेगन दिस।

अर्धनिद्रित—बुझि पड़ल एक बेर—मुसहरी
उड़ि गेल छल हमर माथपरसँ
जा रहल छल नील बसातक सागर दिस, बेलून जकाँ—श्वेत।
एहन छल चमत्कारी राति कल्हुका !

मृत तारा जीवित भ' उठल छल—छलै कहाँ शेष जगह
जत' सभ समा सकतै,
तारागणक बीच सभ प्रिय दिवंगत आकृतिकें देखल हम।
बड़क गाछपर चिल्हक चमकैत साश्रु नेत्रकें !
अन्हारमे देखल झिलमिलाइत तरेगनकें।
कोनो बेबिलोनक रानीक
कन्हापर धयल चित्ताक छलरीक शाल,
एहने छल विस्मयकारी काल्हुक ओ राति !
हजारो वर्ष पहिने जे तारागण मुइल छल, ओहोसभ
देखबामे अबैत छल खिड़कीसँ, लेने अपन-अपन
मृतक आकाशकें, कुहेसाच्छादित छोरपर
ठाढ़ि भ' गेलि दिव्यांगना—विदिशा, असीरिया
आ इजिप्टमे मरैत जकरा रही देखने,
ओहो सभ पतियानी जोरसँ छलि ठाढ़ि,
चमकबैत हवामे कृपाण

परास्त करय मृत्युकें ?
जयकार करय जीवनक ?
ठाढ़ करय प्रेमक स्तम्भ अतुलनीय ?

कल्हुकी रातिमे जोश छलै कत्ते,
नील एक अत्याचार, भुजवी-भुजवी क' देलक-ए
कल्हुकी राति हमरा !
पृथ्वी जेना कोरड़ा हो—कल्हुकी राति—
आकाशमे पसरल विशाल पाँखिक भीतर
कत' नुका रहल छल—कहि ने ।
आरो तेज बिरड़ो आयल छल काल्हि
साँय-साँय करैत—हमर जङलाक भीतर धरि :
टाप हो जेना असंख्य बनगदहाक—सिंहक गर्जनक बीच—
धुधुआक' जरैत विस्तृत मैदानमे ।

हृदय हमर भरल अछि—
सघन हरित घासक हरियरीसँ,
सूर्य-तप्त गंधसँ,
कामातुर वाघिन सन गरजैत बतही विराट्,
रोमयुक्त साँस-भरल चंचल अन्धकारसँ,
जिजीविषाक अदम्य एक नील बतहपनीसँ ।

छोड़ि-छाड़ि पृथ्वीकें, बेलुन-सन फूलल, बेचैन
गेलहुँ हम काल्हि
नील बसातसँ लहराइत सागरमे ।
तरेगनक झंडा फहरबैत बाँस जकाँ
सुदूर आकाशमे गेलहुँ उड़ि
आकाशमे चिल्होड़ि जेना जाइछ उड़ि ।

(हावार रात : महापृथिवी)

हंस

जर्जर पाँखिवला उल्लू उड़ैत अछि तारा दिस,
चन्द्रमाक इंगितिपर

हंस अपन पाँखि फड़फड़बैत अछि जलकुंभीमे
'साइँ-साइँ'क ध्वनि—सुनैतछी
बेर-बेर अजस्र, अपार।

इंजिन जकाँ हड़हड़ाइत रातुक पटरीपर
चोख पाँखि ओकर
उड़ैत अछि—रातिमे।
रहि जाइछ तारासँ भरल गगन
रहि जाइछ गंध हंसक,
शेष बचैछ कल्पनाक हंस किछु!

मन पड़ि जाइछ अकस्मात् आकृति अरुणिमा सन्यालक
अबैत अछि उड़ि-उड़िक'
दूर-कतहु छूटि गेल कालक गामसँ—सोझाँमे।

उड़-उड़ हे हंस कल्पनाक
जड़कालाक इजोरिया रातिमे चुपचाप
उड़ैत रह—सृष्टिक सभ ध्वनि जा धरि नहि भ' जाय स्तब्ध
—उड़ैत रह हृदयक स्तब्धताक इजोरियामे।

(बूनो हाँस : महापृथिवी)

कल्प, जेना भगजोगनी

समयक घनान्धकारमे, कल्प ओहिना करैत अछि खेल
जेना भगजोगनी।

चारू दिस पिरामिड—
मौन चन्द्रिका पसरल अछि रेतपर,
खजूरक छाहरि ठमकल अछि,
स्तम्भ कोनो ढहैत रजवाड़ाक, जर्जर, मरल,
जेना थम्हने हो ओकरा शून्य कोनो।
जगतक कोलाहल शिथिल पड़ल।
गात हमर लेपटायल अछि मृत्यु-निद्रामे,
हवामे सन्हिआयल अछि मृत्युगंध!

मधुर सुरसुराहटि मध्य
पुछैत अछि एक स्वर—
'मोन अछि ?'
'की बनलता सेन ?'—प्रतिप्रश्न हमर।
(हाजार बछर शुधू खेला करे : महापृथिवी)

जड़कालाक राति

एहने जड़कालाक रतिमे, मनमे अबैछ
ध्यान मृत्युक।
बाहर बजैत अछि वैह बुढ़वा उल्लू
झरैत पातक आ खसैत सीतक।

शहरक होइछ अन्त जत', जत'सँ देहात शुरू
ताही सिमानपर सुनैत छी गर्जना सिहक
व्यथित सरकसी केसरीक दहाड़
जड़काला रातिकें सोरपोर चीरैत।

अकस्मात् कोकिलक कूक सेहो पड़ै-ए कानमे
मध्य रातिमे, संसारकें संदेश दैत
आयल छल वसन्त—पुनः आओत एक दिन।

अनगिन कोकिल किन्तु देखिते-देखिते बुढ़ा गेल
हमहूँ तँ बुढ़ायल पक्षिए सन-छी भेल
गरजै-ए केसरी फेर
व्यथित सरकसी सिंह—चिरयुवा, तंद्रिल, आन्हर—
डूबल अंधकारमे।

चारू दिस पसरल समुद्रमे, तकैत शेष जीवनकें
मुइल माछक पुच्छीमे
वेष्टित सेमार—लुप्त होइत सर्वस्व
कुहेसमे, अनन्त नीरमे।

फेर नहि कहियो
कहियो नहि फेर
कथमपि नहि पावि सकत जंगलकें केसरी
कोकिलक कंठ एक भङठल मशीन जकाँ
जर्जर भ' जायत—टुकड़ी-टुकड़ी भ' क'
पसरि जयतै नीक जकाँ ।

विस्मृतिक धरामे सन्हिआयल
संसार हमर ।
फेरू करोट आ सूति रहू
आब नहि, आब नहि
कोनो दिन रुकब ताकि कोनो आर विस्मय !

(शीतरात : महापृथिवी)

हिनक कानमे

ताकिक' तरेगन दिस—
वेदनाकें नुकौने हृदय-बीच
लिखि-लिखिक' अनगिन कविता
कहि ने, कतेक युवक
संसारसँ विदा भ' गेल ।

जगतक दिव्यांगना अनसुन करैत रहलि
चूर अभिमानमे सुनिक' अखरकट्टू गप,
पित्तड़ि आ सोनक एहि सभ स्वरूपक
बज्र बहिर कानमे, तैयो देलक ढारि
अनगिन अमर शब्द, गेल चल
कहि ने कते युवक !
ताकिक' तरेगन दिस—नुकौने हृदय-बीच
मर्म आ पीड़ाकें ।

(इहादेरि काने : महापृथिवी)

बरिसातक राति

बरिसातक अन्हार-गुज्ज निशाभाग रातिमे
आँखिक पल जाइछ खुजि नहुँएसँ—
सुनिक' लपटैत लहरिक कोलाहल बंगालक खाड़ीक
सैकड़ों कोस दूरपर ।

मेघाओन आकाश कारी-स्याह
देखाइ पड़ैत अछि
अपन बाँहिमे धरतीक छोरकें थम्हने
सागरक कोलाहल सुनि-सुनिक' ।

लगै-ए जेना दूर आकाशमे—दूर, कतहु ऊपर
अन्त छोरपर, नीरव गगनमे
खुजि रहल अछि फाटक विशाल,
आ फेर लागि रहल अछि पट्टा ओकर—तेहने-सन लगैए ।

गेरुआपर माथ टेकने सुतै-ए जे—
भोरे पुनि जगबा ले' ।
पतरकी रेखा जे हँसीक, प्रेमक समा गेल छल
धरतीक प्राचीनतम शिलामे—
गुप्प अन्हारमे
आस्तेसँ जगैत अछि
आइ राति ताकिक' अनै-ए ओ हमरा
धरतीक अविचलित पाँजरसँ ।
अकस्मात् थम्हि जाइछ लहरि सिन्धुक जेना—
माइलक माइल धरती हो ओलरल चुपचाप !

राखिक' हमर कन्हापर कुहेस-भरल हाथ
कानमे केओ फुसफुसाइत अछि—
क' जँ सकितहुँ हम फाटककें स्पर्श,
छुबितहुँ अबस्से आजुक निशाभाग रातिमे ।

खोलिक' आँखि अपन
करैत छी प्रवेश ओहि दोहरी फाटकमे

मटमैल मेघ जकाँ।
जाइत छी भीतर—वाओल ओहि मुँहमे ।

(श्रावन राति : महापृथिवी)

स्वप्न

ओछाक' पाण्डुलिपि—टिमटिमाइत दिबारी लग—
गुमसुम भेल बैसल छी,
टपटपा रहल अछि सीत पातपर
नीमक डारिसँ कोन चिड़ै एखन अछि ऊड़ल कुहेसमे
दूर कतहु बिला गेल ओहीमे,
ओकरे उड़लासँ भरिसक दिबारी मिझा गेल
गुप्प अन्हारमे ठेकनबैत छी सलाइ···
पलभरि ठमकैत छी
दिबारी जखन जरि जायत,
देखब कोन आकृति तखन ?

कोन ? भरिसक जे देखने छल एक दिन
एक नजरि, तेतरिक डारिसँ
औंठिया सिंघक रूपमे नील चन्द्रमा
देखने छल ओकरा एहिना, एक दिन
हमर ई पाण्डुलिपि···
बिसरि गेल अछि आकृति ओ आब मुदा पृथ्वी ।

तैयो जखन इजोत ई सभ टा मिझा जायत,
केओ नहि रहत ओत'—मनुक्खक रहत स्वप्ने टा,
रहत ओ आकृति···रहब हम ओकर स्वप्नक भीतर।

(स्वप्न : महापृथिवी)

आह चिल्होड़ि !

स्वर्णिम पाँखिवाली चिल्होड़ि हे !
कानह नहि, फाड़ह नहि छाती तों
उड़ि-उड़िक' मेघाओन दुपहरियामे चक्कर लगबैत।

तोहर विलापसँ मन पड़ैछ आँखि ओकर
बेंतक छरक्काक पीयर फड़ जकाँ मलान
पड़िए सन, धरतीक राजकन्या ओ
दूर कतहु चल गेल···वहुत दूर
लेने अपन सौन्दर्यकें !

किए सोर पाड़ै छैं ?
चोखायल घावकें किए जगबै छैं तों ?
स्वर्णिम पाँखिवाली चिल्होड़ि हे,
कानह नहि, फाहड़ नहि छाती तों
उड़ि-उड़िक' मेघाओन दुपहरियामे चक्कर लगबैत।

(हाय चील : महापृथिवी)

नओ हंस

भोरे-भोर प्रतिदिन देखैत छी नओ गोट हंसकें, पानिमे···
जैतुनक पात-सन कोमल···
तीन गुने तीन नओ होइत अछि तर्कसँ
मुदा नओ होइत अछि ई जेना जादूसँ।

अथाह ई नदी अछि—बड़ गहींर,
उजरा मेघ एकर भीतर पैसि जाइछ
गहींर, अति गहींर, मुदा तैयो
कहाँ पहुँचि पवै अछि समयक गहिरैमे ?

चारू दिस सेज छै नाम-नाम घासक,
हेमन्तक स्थिर पानि जेना बदलि गेल हो

ओहि नील गगनमे,
हंसक ई जमाति दूर कोनो स्त्रीक कोरमे—
अपराह्णक मृदु प्रकाशमे गल अछि घुलिमिलि
किंवा केओ अढ़ियामे माँड़ जेना पसा रहल ।

अकस्मात् नदी भ' जाइछ पुनि नदी
मन पड़ैत अछि नवो हंस एहि महक !

(हाँस : सातटि तारार तिमिर)

सूर्यक इजोतमे

अनवरत विपत्तिक बाद
अबैत अछि संकट जे
जनैत छी—अनुभव करबाक थिक,
एहिसँ बेसी किछु नहि ।

बलुआह घाटसँ होइत अथाह भेल जाइछ जल नदीक
ओहिपर सूर्य-किरण पड़ैत अछि रहि-रहिक'
पानिक ऊपर टिकुलीसभ उड़ैत अछि
मृत्यु आ करुणा दू टा तरुआरि जेना भिड़ल हो
बनबैत अछि आ करैत अछि नष्ट शहर, पुल, मकान ।
गगन ऊपर तानल रहैए, जेना छूरा हो ।

वर्षक वर्षसँ स्थिति यैह—बुझल छैक जे रौद आ हवाकें
जकरा छैं देखल ई—कयने अछि सिनेह सभ ।
आब ओ नहि पाबी : मारल गेल, बिला गेल
समयक सुविधासँ ओ बिका गेल ।

आउ तखन जतहि छी हम—कोनो-ना
वरण करी सत्यकें,
समय की रहल अछि दौड़ि
नव विहानक आशामे ?
दूर कतहु पक्षीक ध्वनि पड़ैत अछि कानमे,

भेल अछि कतहु सूर्योदयो—जकरा नहि देखल गेल अछि
एखन धरि।
मृत्युए नहि सभ-किछु,
किन्तु जे देखवामे अबैत अछि—मृत्यु-सिंधुक ऊपर
से देखल अछि—ओम्हर देने जाइत हमहूँ।
गेल बहुत बिसरि, मुदा एखनो किछु मन अछि।
अरे, हँ, धरतीक बालु, रक्त, करिखासँ ऊपर उठि,
घनान्धकारमे चकमा नहि देलहुँ की वेश्याकें ?
सिखौलहुँ नहि छलना की प्रेयसीकें ?
सिखौने रही ने हम ?

विप्लवी समटैत अछि स्वर्ण
प्रेमी जीवितो उबडुब करैछ मृत्युमे,
चाकरीमे लागल रहैत अछि तथापि
हमरासँ अलक्षित ओ
कत' तखन जीवनक आश्वासन ?

विह्वल भ' तकैत छी बाट हम
दूर धरि कोसो—मंत्रमुग्ध—दूर धरि—समुद्रमे,
चन्द्रोदय भेल नहि कि पक्षी उड़ैत अछि,
हमहूँ तँ चाहै छी उड़िए जाइ—चानकें बिसरिक'।
पाछाँक तरंग सभ छूटि गेल पाछें
आगाँ अछि समुद्रक अन्तहीन हिलकोर,
किछु जे छथि पड़ल एत' अन्हारमे
पक्षहीन—विश्वासहंता—समुद्रक एकपेड़ियापर।
एहन अनगिनत मृत्यु होयत आओर।

'रोकू आब लोकक—खास लोकक मृत्यु।
हमसभ छी मरि गेल।'
एहने ल' अनुभव मृत्युक
इतिहासक सीमाकें टपैत
स्पर्श करैत सुदूरतम अतीतक हरल गेल प्राणकें
जागि ओ उठल अछि—उन्नैस सय तैंतालिसमे,
चौवालिसमे—अन्तहीन—सूर्यक अन्हरायल इजोरमे
—अनन्त धरि।

(सूर्य प्रतिम : सातटि तारार तिमिर)

प्रोफेसर

उदास हँसी हँसिक' हम पूछल—
'लिखैत ने किए छैं तोहीं एक कविता ?
देलक नहि उत्तर कोनो परिछाहीं ।
हम बूझल जे ओ तँ नहि कवि, मात्र भूमिका :
कागत, मोसि, कलम—वस ततवे ।

व्याख्याक उच्चासनपर वैसल दन्तहीन
प्रोफेसर मात्र—कवि नहि
आय—सहस्र, डेढ़ सहस्र मासिक
दिवंगत कविसभक हाड़-हड्डी समटि,
ओहि सभ कविक—जे जीवनक तावमे सेद' चाहै छल हाथ,
हेलैत छल समुद्रमे शार्क मत्स्यक संग जे ।
(समारूढ़, सातटि तारार तिमिर)

लघु मुहूर्त्त

दिनान्तमे तीन गोट भिखमंगा,
जे असलमे भिखमंगा तँ नहि अछि, करैत अछि
अनुभव एक गम्भीर शान्तिक ।
ल' क' हवाक स्वाद···खोलि मुँह
पोछि लैछ अपन मुँह वसातेसँ,
ओ सभ ठाढ़ अछि सड़कक कातमे,
जयबाक छैक ओकरा सुदूर लाल नदीक देश
धोवी आ गदहा जत,
प्रतिविम्वित होइत अछि—
एक-पर-एक चढल जेना जादूक जोरसँ ।

जयबाक पूर्व किन्तु, तीनू भिखमंगा बैसैत अछि
गोल बना पीवैत अछि चाह,
एक बनैछ राजा ओहिमे, एक मंत्री, कोतबाल एक ।

एकटा भिखमङनी सेहो ओहि बीच चल अबैछ···
देखि क' जेर अपन, अथवा चाहक लालचमे ।
चारि मुँह, चारि जोड़ी कान मिलि-जुलिक'
एक भ' जाइत अछि ।

तुम्मासँ मिलबैछ चाहमे पानि कने—
करबा ले' जीवनकें आर अधिक निष्कलुष,
आर अधिक प्रेममय ।
मूड़ी हिलबैत बाजल ओहिमेसँ एक, उदास किछु—
'रोकतै की चेतला-बजार अथवा टालाक टोंटीक
पानि शुद्ध भेने,
जखन छदामो देबा ले' तैयार नहि भिखारिकें क्यों
देओर हो वा भौजी ।

मूड़ी डोलओलक सभ—अपन-अपन बत्तू सन दाढ़ीकें हिला-हिला
तकलक भिखमङनी दिस—जे बैसलि छलि चुड़ैल जकाँ ।
सोचलक—कहियो ई रहलि होयति हंसिनी,
आइ तँ अछि टङटुटूटू पड़बा सन ।
बुढ़िया भिखमङनी दिस एक चाह बढ़ा आओर
(यद्यपि छलै पहिनहुँ सँ एक कप ओकरा लग)
बाजल ओ—
यद्यपि नहि स्वर्ण-रत्न, तैयो की बेगार छी ककरो हमरालोकनि ?

बेंटिक स्ट्रीटक कातमे बैसल ओसभ
बिटिया रहल छल धरतीक सम्पदा ।
सुनिक' ओकर बात कने फेनिल, मच्छर एक
उड़ि-उड़िक' बैसै छल ओकर नाकपर बेरा-बेरी ।
तामसें फेरैत अपन अङुरीकें केसमे
ओसभ छल संसारक जमा-खर्च—न्याय आ अन्याय—
कोना धर्मकाँटा हिलि जाइ अछि,
मङनियो औषध जँ भेटय मुद्दला उत्तर—कोन काजक ?
यैह सभ वार्तालाप करैत रहल चारू जन बड़ी काल
जयबाक छैक ओकरा उड़ैत नदीक छोर दिस —
जत' टूटल हाड़ आ मंत्रविद्ध बानर दहाइत पानिमे

अबैत अछि संगहि-संग—प्रतिबिम्बित होइत अछि
तावत धरि—जा धरि रहैत छैक बेला-प्रतिबिम्बनक !
(लघु मुहूर्त्त : सातटि तारार तिमिर)

घुरि जाह सुरंजना

जो जुनि, जोड़ै छियौ क'ल, जुनि जो ओत' सुरंजने,
बाज नहि ओहि मनसासँ, कर नहि गप,
घुरि जो, चम्पै आगि-सन भरल आकाश छै
आइ राति—घुरि जो सुरंजने !

एही ठाम घुरि जो—एही लहरिमे,
आबि जो हमर हृदयमे धुरिक'
जो नहि, किन्नहुँ नहि धर ओहि मनसाक संग
बहुत-बहुत दूर, नहि जो आब आर अधिक ।

की छौ दुटप्पी तोरा ओकरासँ—ओकरासँ ?
गगनक पार गगन
माटिक मुरुत छैं तों आइ
ओकर प्रेम तँ माटिपर उगलाहा घास थिकौ ।

सुरंजने, तोहर हृदय बनल छौ घास आइ,
हवाक पार हवा
गगनक पार गगन ।
(आकाशलीना : सातटि तारार तिमिर)

समाधि

एही ठाँ पड़लि अछि सरोजिनी (आबहु धरि
अछि पड़लि ? कहि ने) बहुतो दिन धरि पड़लि छलि—
भरिसक आब उठिक' चल गेलि अछि दूर—

मेघखण्डक बीच
ओतहि—जत' अन्त होइछ अन्हारक—जत'
प्रकाश टिमटिमाइत अछि

चल्ले गेलि की सरोजिनी ?
बिनु सीढ़िएक, पक्षियोक आँखि बिना ?
अथवा, ओ धरतीक ज्यामितिक पोटरी अछि आइ ।
किन्तु ज्यामितिक प्रेतछाया कहैत अछि : बूझल नहि हमरा ।

संध्याकाल केसरिया रंगक प्रकाश अछि
आकाशसँ लागल—अदृश्य बिलाड़ि जकाँ,
जकर मुँहपर छै मुसकान चतुर-धूर्त्त ।

(सप्तक : सातटि तारार तिमिर)

बसन्तक अनन्तर

दिनान्तमे गीदड़ अबैत अछि
कलबन—जंगल-पहाड़मे—
शिकारक ताकमे—जन्म-जन्मान्तरसँ, सघन
अन्धकारकें भेदन क' पहुँचैत हठात्—मुक्त गगन-तल
देखैत अछि सूतल—इजोरियामे—राशि-राशि बर्फकें ।

एहनामे, सभक मनक बातकें
उजागर ओ क' सकैत मनुक्खे जकाँ
ओकर मनमे समेतै तखन विस्मय जे—
एक सघन पीड़ा-सन—ओही तरहें
जीवन-वसन्तक अनन्तर देखि तोरा
हठात् हमरा
विस्मयसँ होइत अछि पुलक नस-नसमे ।

(सेई सब शेयालेरा : सातटि तारार तिमिर)

यात्री

युगादि पूर्व, लगैत अछि,
निर्मल एक सागरक कछेड़मे
जीवनक भेल छल हेतै जन्म।

छलैक एकर पहिने चित्रांकित कुहेस,
जाहिमे छलैक चेन्ह—ने जन्मक, ने मृत्युक।

बिसरिक', अस्ते-अस्ते, कुहेसक चित्रांकन
कोनो अनजानल आत्मीय लगाओसँ
झुलैत चल अबैत अछि
प्रकाशसँ, आकाशसँ, जलसँ
नवीन अर्थक जन्म भेलै धरतीक मचकीपर।

आदमी अबैत अछि ल' क' हृदयमे
जन्म आ मृत्युक उज्जर-कारी रंगकें—
एहिना पृथ्वीपर !
कारी-स्याह छाउरक कंगाल तथा चारू दिस पसरल
रक्त-लिप्त बाटपर
अन्तहीन इच्छाक चिह्नक बीचोबीच होइत
आयल छी बुझयबा लें अपन जन्म
ककरा हम ?
पृथ्वीकें ? गगनकें ? लहकैत सूर्यकें ?
धूराकें ? अणु-परमाणुकें ? छाहरिकें ? वर्षाक बुन्नीकें ?
शहर बन्दरगाहकें ? राज्यकें ?
ज्ञान-अज्ञानसँ भरल एहि विश्वकें ?

कुहेस, जे हमर जन्म-पूर्वो छल
कुहेस, जे मृत्युक बादो रहत
आबिक' ओ आइ प्रकाशक भीतर
सघन अन्हार-सन भरैत अछि,
घूरि जाय चाहैत अछि समयहीन
कहिया लहराइत समुद्र दिस।

किन्तु सूर्य प्रतिदिन अनैत अछि प्रकाशकें,
जीवनक वाटकें, मृत्युकें
वूझल नहि छैक अर्थ महाइतिहासोकें
आइ धरि जकर ।

एही दिस लोक अछि वढ़ि रहल
प्रेम, क्षय, पीड़ा—सभ टा सहैत
डेग-डेगपर ।

धुआँ-सन मन, कलकल करैत नदी निरन्तर,
पहुँचैत अछि रात्र्यन्तमे,
पुनः फेर उषा
अन्तहीन गाथाक अनन्त उषा—

नवीन सूर्य, नव पक्षी, नूतन चिह्न नगरमे, निवासमे
नव-नव यात्री सेहो शामिल भ' जाइत अछि,
पयरमे गति, हृदयमे ज्योति, यात्राक लयबद्धता
—अन्तहीन यात्राक, भेटल छै
भरिसक ओकरा अनन्त धरि !

(यात्री : श्रेष्ठ कविता)

अनुपम त्रिवेदी

जड़कालाक एहि निशीथमे
झलकि जाइछ अनुपम त्रिवेदीक आकृति,
यद्यपि ओ नहि छथि आब सशरीर पृथ्वीक
अकादारुण गोल पेटक भीरत आइ । टेबुलपर पसरल
नैश शीतक स्तब्ध अन्हारमे, जगबैत अछि हुनक स्मृति
जीवन्त आ मृत चिन्तनक मध्य हठात् । टेबुलपर गेंटल
पोथी सभ हमर मानसकें ल' जाइत अछि
प्लेटोसँ टैगोर धरि, हमरा जे द' द' क' अपन चिन्तन

सीतक चद्दरिमे लेपटायल सूतल छथि बाहर पालामे ।
दीप मिझाक' अपन धरतीपर
त्रिवेदी तोड़ैत होयथिन हुनक सभक निन्न अबस्से ।
बोधि आ पुनर्जन्म, तन्त्र आ रहस्य-विद्या, हेगेल आ मार्क्स—
हुनक दुनू कान पकड़िक' विपरीत दिशामे घीचै छल ।
एक बेर समधानि क' हाथ, टेढ़ क' भहुँ,
सशरीर प्रेमकें ओ जान' चाहैत छथि, ज्ञानसँ बेसी, प्रेमोसँ
बेसी एक टोटेमकें, हृदयक भीतर नुकौने छवि ऊँटक,
जेना कोनो स्त्री मृगतृष्णा जीत' ले' बढ़ैत हो—
बढ़ैत अछि ओ स्त्री कल्पना-गतिमे, घी-रंगक साड़ीमे
वेष्टित ओ दक्षिण वंगालक ? ओतहिक टा भ' सकैछ ?
नूआक आँचरक गीरह देखाइ नहि पड़ैत अछि,
उत्तरपाड़ा, वंडेल, काशीपुर, बोहलाकें टपैत—
उठौने बोझ माथपर नेहरू आ
स्टालिनक, राय, ब्लोकक,
तीन धाप नपलाक बाद, आरो बचतै भूमि शहीद होयबाले',
प्रेम तँ नहि कहब एकरा,
एही सभक चिन्तनामे अधीर भ' उठला त्रिवेदी—
हृदय निस्पन्द !
सार-असार द्वंद्वक बीच हम बाँचल छी—
घिचा रहल छी विपरीत दिशामे—
अइंठा गेल छलनि त्रिवेदीक कान आखरी जोरसँ ।

(अनुपम त्रिवेदी : श्रेष्ठ कविता)

अद्भुत अन्हार एक

पृथ्वीक एहि अद्भुत अन्हारमे आइ
आँखि तँ वास्तवमे अन्हारेक लग छै ।
हृदयमे जकर प्रेम नहि, करुणा नहि,
साम्राज्य ओकरे छै ।
लोकपर जकर आइयो भरोस छै—

चाहैछ जे प्रकाश-प्रेम
अनुसंधान सत्यक निरन्तर,
भेड़ी आ गिद्ध लगौने अछि दृष्टि ओकरेपर—
खाइत अछि ओकरे ई।

(अद्‌भुत आंधार एक : श्रेष्ठ कविता)

घुरिक' आयब फेर

एक दिन घुरिक' आयब फेर, घुरिक' आयब फेर बंगाल हम
बहैत नदीक धार, जत' धानक अछि बाध सुभग,
तहिया नहि भरिसक मनुक्ख रहब, रहब प्रायः अबाबील,
अथवा कौआ ओहि अहल भोरक—धानक नव
जजातिपर टुटैत।
कुहेसक मचकीसँ कटहरक छाहरि धरि झूलैत
आयब एक दिन।
भरसिक कोनो किशोरीक बनिक' हंस
घुघरू लाल पयरमे,
हेलैत रहब हम भरि-भरि दिन पानिमे—
जत' गंध घासक रहत व्याप्त,
आयब ओतहि। बंगालक नदी आ बाध सोर पाड़त—
हम आबि जायब। जकरा नदी अपन जलसँ धोइत रहैत अछि
—एही हरित सजल कछेड़पर।

भरिसक अहाँ देखब संध्याक बसातक संग उड़ैत एक उल्लूकें
भरिसक अहाँ सुनब बड़क गाछपर ओकर बोल
तृणाच्छादित भूमिपर एक मुट्ठी भात कोनो फेकि देतै नेना
देखब, रुपसाक मटमैल जलमे नाव खेवने जाइत एक छौंड़ाकें
—फड़फड़ाइत फाटल पालक नाव।
रंगीन मेघक बीच मरड़ाइत होयत सारस पक्षीक झुंड
अन्हारमे रहब हम ओकरे बीचमे,
देखब।

(आबार आसिब फिरे : रूपसी बांग्ला)

आइ राति

केहन दिव होइत, रहितहुँ अहाँ आजुक राति एत'—
करितहुँ गप-शप—गाछ, हवा, घास आ तरेगनक
वीच वैसिक'।
बूझल अछि हमरा मुदा, होइत ओहि नियमसँ
सकल चिन्तन, संवेग अछि आवद्ध
भारत की चीन, लंदन की न्यूयार्क—कोनो ठाम
रहस्य आइ रातुक मृत मैमथक—
कतेक अछि नियमाधीन—अन्ततः।

एहि क्षण कहाँ छी अहाँ ?
हाथमे अछि पासा केहन ?
—पूछू जुनि; पूछब सभ टा समुचित नहि।

जाहि साँझकें, भोरकें, नदीकें, तरेगनकें चिन्हलहुँ अछि
हम नीक जकाँ, ओहीमे अछि एक ओहो, जकरा
जनबाक अछि !

(आजकेर रात : बेला अबेला कालबेला)

संदर्भ–सूची

जीवनानन्द दासक कृति

कविता संग्रह :

झरा पलक : 1924

धूसर पाण्डुलिपि : डी० एम० लायब्रेरी, कलकत्ता, 1936

महापृथ्वी : पूर्वासा लिमिटेड, कलकत्ता, 1944

सातटि तारार तिमिर : गुप्ता रहमान एंड गुप्ता, कलकत्ता, 1948

वनलता सेन : सिगनेट प्रेस, कलकत्ता, 1952

श्रेष्ठ कविता : भारवि, कलकत्ता, 1954

रूपसी बांग्ला : सिगनेट प्रेस, कलकत्ता, 1957

वेला अबेला कालवेला : न्यू स्क्रिप्ट, कलकत्ता, 1969

कविता कथा
(कवितापर लेख) : सिगनेट प्रेस, कलकत्ता, 1955

जीवनानन्द दासपर लिखल गेल सामग्री

निरुक्त (पत्रिका) : संजय भट्टाचार्यक लेख, आषाढ़, 1350 (1943)

परिचय (पत्रिका) : सुभाष मुखोपाध्यायक लेख, श्रावण, 1360 (1953)

मयूख (पत्रिका) : जीवनानन्द दास स्मृति विशेषांक, 1954

कविता (पत्रिका) : बुद्धदेव बोस द्वारा सम्पादित जीवनानन्द दास पर विशेषांक; पौष, 1361 (1954) कलकत्ता

उषा (पत्रिका) : जीवनानन्द दास विशेषांक, बुद्धदेव बोस द्वारा सम्पादित, पौष 1361 (1954) कलकत्ता

एकक (पत्रिका) : जतीन्द्रनाथ सेन गुप्त आ जीवनानन्द दास विशेषांक (संयुक्त) कार्तिक-चैत्र, 1361 (1954) कलकत्ता

आनन्द बाजार(पत्रिका) : अजित दत्तक लेख, 14 कार्तिक, 1361 (1954) कलकत्ता ।

क्रान्ति (पत्रिका) : नारायण गंगोपाध्यायक लेख, कार्तिक, 1361(1954)

उत्तर सूरी (पत्रिका) : जीवनानन्द दास विशेषांक, पौष-फाल्गुन 1361, (1954) अरुण भट्टाचार्यक लेख, वैशाख-आषाढ़, 1363 (1956) अमलेन्दु बोसक लेख, कार्तिक-पौष। अरुण भट्टाचार्यक लेख, कार्तिक-पौष 1367 (1960)

कविता (पत्रिका) : निरुपम चट्टोपाध्यायक लेख, आश्विन, 1363 (1956)

आधुनिक बांगला काव्य-परिचय : दीप्ति त्रिपाठीक लेख, नवाना, कलकत्ता, 1958

कविताय धर्म ओ कविता ऋतुबदल : अरुण भट्टाचार्यक लेख, जिज्ञासा, कलकत्ता, 1958

कालेर पुतुल : बुद्धदेव बोसक लेख, न्यू एज पब्लिशिंग, कलकत्ता, 1959

एक टी नक्षत्र आसे : अंबुज बसुक पुस्तक, (भूमिका अमलेन्दु बसु) दीपान्विता पब्लिशर्स, कलकत्ता, 1965

दैनिक कविता : कविता सिंह द्वारा सम्पादित, 25 वैशाख, संकलन, जनवरी-अप्रैल, 1968 (जीवनानन्द दासक पत्नी लावण्य दासक संग भेंटवार्ता) प्रवणेन्दु दास गुप्त द्वारा सम्पादित, मई, 1966

कविता परिचय : अमरेन्द्र चक्रवर्ती द्वारा सम्पादित, सातम संकलन, 1966, विजय मजुमदारक लेख 'अद्भुत आधार एक : जीवनानन्द दास' आठम संकलन, आलोक सरकारक लेख, : 'घोरा जीवनानन्द दास' चैत्र 1969—तीर्थंकर चट्टोपाध्यायक लेख 'मृत्युर आगे : जीवनानन्द दास'

माडर्न बंगाली पोएम्स : देवीप्रसाद चट्टोपाध्याय द्वारा संपादित—प्रमुखतः मार्टिन किर्फमैनक अनुवाद, सिगनेट प्रेस, कलकत्ता, 1945

स्टडीज इन मार्डन बंगाली पोएट्री : निर्मल घोष द्वारा सम्पादित—जीवनानन्द दासपर अमलेन्दु बोसक संग एक लेख; नावेला कलकत्ता, 1968

जर्नल आफ एशियन स्टडीज : एशिया सोसायटी, न्यूयार्क, जीवनानन्द दासक बिंबविधानपर मेरी लैंगीक लेख।

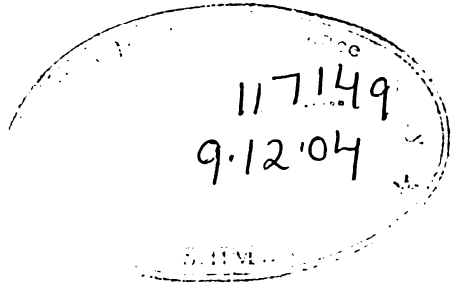

जीवनानन्द दास (1899-1954) बंगालमे व्यापक रूपसँ रवीद्रनाथक बाद सभसँ महत्त्वपूर्ण कवि मानल जाइत छथि।

हिनक शक्ति एहिमे निहित अछि जे रवीद्रनाथक परम्पराकें एक नवयुगक मोहाबिरा आ चेतनामे आगाँ बढ़ा सकलाह। हिनक बिम्बक विस्मयकारी मौलिकता आ सभ मिलाक' हिनक सम्मोहक कविता बंगालक युवा पीढ़ीपर गंभीर प्रभाव उत्पन्न कयने अछि। जीवनानन्द दास पूर्णतः समकालीन छथि, तथापि हिनकामे परम्पराक गहन बोध छनि। पूर्व बंगालक ग्रामीण परिवेशमे अत्यधिक भावपूर्ण ढंगसँ रहैत जीवनानन्द दासकें बंगाली जीवन आ परिदृश्यकें एतबा आत्मीयता एवं सूक्ष्मतासँ जनबाक अवसर भेटलनि जे बंगलादेशक लोककें सत्ते हिनक कवितामे अपन मातृभूमिक प्रशंसामे कयल गेल अत्यन्त मर्मस्पर्शी आ वैयक्तिक अभिव्यक्ति देखबामे अयलनि। एहि संग्रहमे हिनक 29 कविताक अनुवाद अछि जे हिनक किछु सर्वोत्कृष्ट रचनाक प्रतिनिधित्व करैत अछि।

चिदानन्द दासगुप्त जनिक रवीन्द्रनाथसँ ल'क' माणिक बन्द्योपाध्याय आ समर सेन धरिक अनुवाद सुप्रसिद्ध अछि, जीवनानन्द दासक अध्ययन कतेको वर्ष पर्यन्त कयने छथि। कोनो भारतीय भाषाक अनुवादमे हिनक अनुवाद दुर्लभ अनुवादसभमेसँ अछि आ जे अंगरेजीमे कविताक रूपमे आनन्ददायक अछि। कविक जीवनकालमे हुनक संग अपन घनिष्ठताक कारणें हिनका हुनक कविताक विभिन्न पक्ष आ हुनक व्यक्तित्वकें बुझबामे विशेष अन्तदृष्टि प्राप्त छनि। अपन भूमिका आ अनुवादमे चिदानन्द दासगुप्त अपन [illegible] प्रेम—विशेष रूपें जीवनानन्ददासक [illegible] उद्घाटित करैत छथि।

एतय ई स्मरणीय अछि जे जखन 1[illegible] भाषासभमेंसँ प्रत्येकक सर्वश्रेष्ठ कृतिपर [illegible] गेल तँ बंगलामे पुरस्कार लेल चयन कयल गेल प्रथम पुस्तक छल जीवनानन्द दासक कविता-संग्रह—'श्रेष्ठ कविता'।

Library IIAS, Shimla
MT 891.441 6 D 26 D
00117149

SAHITYA AKADEMI
REVISED PRICE Rs. 15.00